।। ओ३म् ।।
पाक्षिक
परोपकारी
परोपकारिणी
• वर्ष ५९ • अंक २१ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • नवम्बर (प्रथम) २०१७

महर्षि दयानन्द सरस्वती

योग साधना शिविर ८ से १५ अक्टूबर २०१७

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५९ अंक : २१

दयानन्दाब्द: १९३

विक्रम संवत्: कार्तिक शुक्ल २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.,
त्रिवार्षिक-५८० रु.,
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.।
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर,
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर,
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।*

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

नवम्बर प्रथम २०१७

अनुक्रम

०१. वेद ही क्यों?	सम्पादकीय	०४
०२. ईश्वर की सिद्धि	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. भावनात्मक एकता-दार्शनिक....	पं. उदयवीर शास्त्री	१४
०५. आर्यजनता से आह्वान		१८
०६. शङ्का - समाधान - १२	डॉ. वेदपाल	२०
०७. पुस्तक परिचय	देवमुनि	२४
०८. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२५
०९. सोलह कलाएँ	प्रकाश चौधरी	२६
१०. पराच: कामाननुयन्ति बाला:	तपेन्द्र	२९
११. आर्य जब से हिन्दू बना, मूर्ख...	आर्य प्रहलाद गिरि	३४
१२. संस्था-समाचार		३६
१३. यथार्थ के दर्पण में	विवेकानन्द सरस्वती	३८
१४. पाठकों की प्रतिक्रिया		४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

वेद ही क्यों?

यह शत-प्रतिशत सत्य है कि हम स्वतन्त्रता के लगभग सत्तर वर्षों के बाद भी शिक्षा और शिक्षणालयों-विद्यालयों-विश्वविद्यालयों के मामले में अंग्रेजकालीन दासता से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके हैं। इसके अनेक कारण हैं-पहला तो यही है कि अंग्रेजी-पद्धति आज भी आजीविका का साधन है; हर जगह अंग्रेजी व्याप्त है, अत: चिन्तन भी वैसा ही होना स्वाभाविक है। दूसरा यह कि अपनी-अपनी राजनीतिक विचारधारा (झूठी-सच्ची) की रक्षा करनी है, क्योंकि उससे लोकोन्नति के लाभ प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। तीसरा कारण अज्ञानता और कूपमंडूकता है, जिसके कारण हम एक सीमित दायरे में विचार कर पाते हैं, इस दायरे के बाहर भी कुछ है; ऐसा हम सोच भी नहीं पाते हैं। इनमें प्राध्यापक-शिक्षक, वैज्ञानिक-इंजीनियर, राजनीतिक दल, पौराणिक, पोंगापन्थी, अन्ध श्रद्धालु इत्यादि सब समाहित हो जाते हैं।

इसी दास भाव-चिन्तन के कारण हम यह नहीं समझ पाते कि सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्मा का स्वरूप क्या है, उसके गुण-कर्म-स्वभाव कैसे हैं और उसके द्वारा प्रदत्त वेद-ज्ञान का स्वरूप कैसा है। **'वेद'** के नाम से अधकचरा प्राध्यापक उपेक्षाभाव से मुस्कुराता है, राजनेता धर्मनिरपेक्षता में और मार्क्स की थ्योरी में उसको फिट नहीं पाता है और बे-पढ़ा भक्त साकार ईश्वर के मुख से 'वेद' की अपेक्षा **'राधे राधे'** का कीर्तन मात्र सुनना चाहता है।

भारतीय संस्कृति का आधार वेद है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। यह कथन पाश्चात्य विद्वान् और उनके आधार पर पौर्वात्य विद्वान् करते हैं। इसीलिए विदेशी आक्रान्ताओं ने मुख्य रूप से ईसाई मत के अनुयायी अंग्रेजों ने सर्वाधिक वेदों के सिद्धान्तों पर आक्रमण किया और यूरोपीय ऐतिहासिक परम्परा को भारत में थोपकर एक ऐतिहासिक क्रम-विकास को प्रतिपादित करने का विकृत कार्य किया। परतन्त्रता की अवस्था में भारतीय बौद्धिक वर्ग ने जो अंग्रेजी भाषा से पढ़ा-लिखा था, उसने इस विचार को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए हाथों-हाथ अपनी-अपनी गवेषणाएं प्रस्तुत कर दीं। यह करना उनके लिए उचित भी था, क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बाद में ब्रिटिश शासन के अधीन उच्च पद पाने की अभिलाषा ने उन्हें यह कार्य करने को अभिप्रेरित किया था।

तथाकथित अधुनातन भारतीय मनीषा वेदों के भाष्य के लिए फ्रेडरिक मैक्समूलर को सर्वश्रेष्ठ ऋषि मानती है। आज के विद्या के केन्द्र और उनमें अध्यापन कराने वाले अध्यापकगण पदे-पदे मैक्समूलर या उसके अनुयायियों के वाक्यों को ही सर्वाधिक प्रमाण मानते हुए भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात करते हैं। जैसे-**आर्य बाहर से आये थे, ब्राह्मणों ने गोमांस खाने का प्रावधान किया और वे स्वयं गोभक्षक थे, वैदिक संस्कृति अवैज्ञानिक संस्कृति थी, जातिवादी व्यवस्था ही नहीं अपितु लिंगभेद के आधार पर महिलाओं और दलितों (शूद्रों) पर घोर अत्याचार होते थे, वैज्ञानिक सोच का अत्यन्त अभाव था, आध्यात्मिकता के स्थान पर कर्मकाण्ड पर बल दिया गया, उपनिषदों में परमतत्त्व के रूप में आध्यात्मिकता का विकास और वेदान्त एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है इत्यादि।** ऐसे कितने ही प्रायोजित तथ्य उनके स्वयं की उपज नहीं हैं वरन् एक सुनियोजित योजना के अन्तर्गत भारत को अशिक्षित, जंगली सभ्यता, मानव विरोधी, और अवैज्ञानिक सिद्ध कर पश्चिम को सर्वश्रेष्ठ सभ्यता का जनक बनाकर ही वह अपनी उन मान्यताओं को पोषित कर सकते हैं ताकि भारतीयों में हीन भावना का संचार कर सकें और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि विगत स्वतन्त्रता से पूर्व जो एतद्विषयक अभियान चलाया गया, वही स्वतन्त्रता के बाद आज तक निरन्तर जारी है।

उपर्युक्त स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द से पूर्व महीधर, सायण, वेंकट माधव, उव्वट, स्कन्दस्वामी, उद्गीथ इत्यादि के विभिन्न वेदों के भाष्य मिलते हैं। जबकि यूरोपीय विद्वानों में जर्मन और अंग्रेजी

विद्वानों ने वेदों के भाष्य किए, जिनमें मैक्समूलर, ग्रिफिथ, मैक्डॉनल्ड, विल्सन, इत्यादि के भाष्य हैं। लेकिन महर्षि दयानन्द का मौलिक चिन्तन वेदभाष्य के दृष्टिकोण से श्रेष्ठतम इस कारण रहा, क्योंकि उन्होंने आर्षप्रणाली के आधार पर कहा कि वेद सब सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं, वेद अपौरुषेय हैं, वेदों में किसी व्यक्ति तथा किसी काल का इतिहास नहीं है। वेद के भाष्य में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तत्त्वों का समावेश होना आवश्यक है, यही ऋषियों की तात्त्विक दृष्टि है। वेद के नित्यत्व को स्वीकार करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण ज्ञान का आधार भी वेद को ही माना।

महर्षि के पश्चात् आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों ने विस्तार से महर्षि के वेदविषयक सिद्धान्तों और मन्तव्यों को वेदांगों, उपांगों के आधार पर तथा एतद्विषयक अन्य साहित्य एवं भाषावैज्ञानिक, वैज्ञानिक प्रमाणपूर्वक परिपुष्ट किया।

आज हमारे सम्मुख चुनौती यह है कि महर्षि के अवसान (१८८३) के बाद भी आज भारत के विश्वविद्यालयों में महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य, वेद-चिन्तन, भारतीय संस्कृति का यथार्थ स्वरूप, मानव निर्माण के लिए वैदिक सिद्धान्त इत्यादि को किसी भी रूप में पाठ्यक्रम में समाहित नहीं किया गया है। मुझे कितने ही विद्वानों से इस संबन्ध में वार्ता करने का अवसर मिला तो वे मूलतः महर्षि दयानन्द के ऋषितुल्य वेदभाष्य-चिन्तन से अछूते नजर आए और कुछ प्राध्यापकों से चर्चा भी कि तो वे यह मानते नजर आए कि महर्षि दयानन्द का वैदिक चिन्तन और उनके दार्शनिक विचार तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

वास्तव में सर्वज्ञ परमात्मा से निःश्वसित वेद-ज्ञान-भास्कर के आलोक में यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का जो मार्ग महर्षि हमें प्रदर्शित कर गए हैं उसको इन दीपज्ञानधारी मत-मतान्तरों के अनुयायियों तक पहुँचाने की महती आवश्यकता है। इसके लिए ही महर्षि विद्वान् उपदेशकों और प्रचारकों की सेना खड़ी करना चाहते थे। आज भौतिक विज्ञान के आविष्कारों से संचार के जो साधन मनुष्य को प्राप्त हैं, हम आर्यों को उनका सावधानी से उपयोग करते हुए वैदिक ज्ञान और लोकोपकारी सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अत्यन्त पुरुषार्थ करना होगा।

प्रसन्नता का विषय है कि आर्यजगत् के गौरव श्रीमान् डॉ. सत्यपाल सिंह जी भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय में राज्यमंत्री के पद पर सुशोभित हैं। आर्यजगत् उनसे आशा और अपेक्षा करता है कि वे अपने अधीन आने वाली शैक्षणिक संस्थाओं में महर्षि के सर्वजनहितकारी, मानवमात्र के लिए वरेण्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की दिशा में प्रयत्न करेंगे। 'सबकी उन्नति में अपनी उन्नति' का उद्घोष वास्तव में देश, काल जाति, मत-सम्प्रदायों से ऊपर है, अतः भारत के संविधान की पन्थनिरपेक्षता की धारणा के अनुकूल भी है।

यद्यपि आर्ष मनीषा और पुरातन संपूर्ण साहित्य पुकार-पुकार कर कहता है कि वेद-वाणी नित्य है, शाश्वत है, साक्षात् ब्रह्म उसका उपदेष्टा है, नीरजस्तम, परम लोकोपकारी चिन्तक उस वेदवाक् के संवाहक रहे हैं। परन्तु नास्तिकों की तो छोड़िए, पौराणिक सम्प्रदाय तक सायण को बिना पढ़े उसकी वेद-संबन्धी बातों का समर्थन इस कारण करता है कि उस पर मैक्समूलर की मुहर लगी है और ऋषिवर दयानन्द के मुकाबले उसे खड़ा किया जा सकता है। ऐसे अल्प पठित पाश्चात्यों को जानना चाहिए कि ब्रिटिश सरकार का मुहरा होने पर भी दयानन्द की **'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका'** के सत्य से भयभीत मैक्समूलर को दयानन्द के बारे में लिखना पड़ा-''ऋग्वेद से आरम्भ करके दयानन्द द्वारा संपादित **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** तक के समूचे संस्कृत साहित्य........।'' इस दृष्टि से मैक्समूलर का सारा वेद-विरोधी सिद्धान्त महर्षि के इस ग्रन्थ की झंझा में तिनके-तिनके होकर बिखर जाता है। महर्षि के शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपने **'आशा की उषा'** ग्रन्थ में मैक्समूलर की अच्छी खबर ली है।

संक्षेप में कहना यह है कि ईश्वरीय वाणी वेद, वेद के संवाहक ऋषियों की पंक्ति में विराजमान दयानन्द को जब तक पठन-पाठन में स्थान नहीं दिया जाता तब तक वास्तविक भारतीय संस्कृति को पहचानना और उसका उद्धार करना संभव नहीं है। वैदिक दृष्टि से देखने पर ही विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान संभव है-

न वेदशास्त्रादयत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निःसृत सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्।।

दिनेश

ईश्वर की सिद्धि

स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन की आपने चर्चा सुनी होगी और बरेली की घटना भी जरूर सुनी होगी। उस घटना में केवल एक बात आपको कहना चाहता हूँ। हमको लगता है कि हमको कोई ईश्वर के बारे में बता दे। क्या ऋषि दयानन्द स्वामी श्रद्धानन्द जी को ईश्वर के बारे में बता सके? वो १० दिन लगातार उनसे प्रश्न करते रहे और दस दिन तक स्वामी जी उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहे। अन्तिम दिन महात्मा मुंशीराम कहने लगे कि आपने मेरे प्रश्नों का तो उत्तर दे दिया और मुझे निरुत्तर भी कर दिया, लेकिन मुझे ईश्वर का विश्वास नहीं हुआ कि ईश्वर है। ऋषि दयानन्द ने एक अद्‌भुत उत्तर दिया, बहुत ही प्रामाणिक और अनुभवजन्य उत्तर है। उन्होंने कहा कि मैंने कभी यह वायदा नहीं किया कि मैं आपको ईश्वर का विश्वास दिला दूँगा। आपने प्रश्न किया और मैंने उत्तर दिया। आप और प्रश्न करिये, मैं और उत्तर दूँगा। जहाँ तक विश्वास का प्रश्न है, वो तो जिस दिन ईश्वर कृपा करेगा, उस दिन पैदा होगा। विश्वास अन्दर से आने वाली चीज है, बाहर से नहीं और इसके लिए उन्होंने एक पंक्ति सुनाई-''**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेध्या.....स्वाम्**'' (कठो.) भगवान् प्रवचन करने-सुनने से नहीं मिलता। न सुनने वाले को मिलता, न करने वाले को मिलता। बहुत दिमाग से मिलता तो ये जो बहुत बड़े-बड़े उपग्रह बनाने वाले हैं उनको तो कभी का मिल गया होता। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ महारथी हुए हैं, बड़े ग्रन्थकार हुए हैं, बहुत बड़े-बड़े शास्त्र रच डाले हैं जिन्होंने, विज्ञान की पुस्तकें रच डाली हैं, गणित के सिद्धान्त हल कर लिए हैं, उनको ईश्वर मिल जाना चाहिए। कहता है ना ''**न अयम् आत्मा प्रवचनेन... श्रुतेन**'' फिर बोले कैसे मिलता है-**यमैवेष वृणुते तेन लभ्य**। भगवान् जिसको चाहता है उसको मिलता है। वो जिसका वरण करता है। उसको अपने लायक समझता है, उसको मिलता है, ''**तेन लभ्य.....तनूम् स्वाम्**''-अपने समस्त स्वरूप को उसके सामने उद्घाटित कर देता है। लोग सोचते हैं कि जब प्रवचन से मिलता नहीं तो प्रवचन करते क्यूँ हैं? व्यर्थ का ही काम है ये? क्योंकि प्रवचन से तो ईश्वर मिलता नहीं। ये बात उपनिषत्‌कार कह रहा है, तो फिर छोड़ देना चाहिए यह प्रवचन?

अब यहाँ एक बात की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। किसी कार्य की सिद्धि दो तरह से होती है-एक सिद्धान्त से, दूसरी अनुभव से, व्यवहार से। वैसे ही ईश्वर की सिद्धि भी दो तरह से होती है, सिद्धान्त से और अनुभव से। भले ही हमारे पास अनुभव से ईश्वर की सिद्धि का प्रयोग अभी है नहीं या हमारा सामर्थ्य नहीं है, लेकिन हम बौद्धिक दृष्टि से, प्रमाणों से, शब्दों से जरूर ईश्वर को सिद्ध करते हैं, कर सकते हैं। आप विज्ञान पढ़ते हो तो विज्ञान की कक्षायें सदा दो लगा करती हैं- एक थ्योरी दूसरी प्रैक्टिकल। जो चीज सामने नहीं होती, उसको जानने के लिये पहले सिद्धान्त बताया जाता है और फिर उसको व्यवहार में लाया जाता है। वही स्थिति ईश्वर की है। हमारी जो सिद्धान्त चर्चा है, ये ईश्वर की चर्चा है, यह व्यर्थ नहीं है, बेकार नहीं है। यह सिद्धान्त की कक्षा है। हमें सिद्धान्त से विश्वास हो जाता है फिर अनुभव करते हैं। क्रियात्मक तो स्वयं ही करना पड़ता है, उसे कोई दूसरा करा ही नहीं सकता, क्योंकि वह बाहर वस्तु की नहीं है।

कल हम यह कह रहे थे कि संसार में कितनी तरह के लोग हैं-कुछ लोग ईश्वर को मानते ही नहीं है, जिन्हें आप कम्युनिस्ट कह सकते हैं, चार्वाक कह सकते हैं, जिन्हें आप वाममार्गी कह सकते हैं, जिन्हें आप नास्तिक कह सकते हैं। वो कहते हैं बिना ईश्वर के दुनिया चल रही है। दूसरे लोग कहते हैं कि ईश्वर ही है, ईश्वर के अतिरिक्त इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। कुछ लोग कहते हैं-ईश्वर है, जीव है। कुछ कहते हैं जीव है और प्रकृति है अर्थात् तीन में से दो मानते हैं। कोई ईश्वर के साथ जीव को मानते हैं, कोई जीव के साथ प्रकृति को मान लेता है, ईश्वर को नहीं मानता। और आर्यसमाज क्या मानता है? तीन मानता है ईश्वर, जीव और प्रकृति। इनमें अन्तर क्या है? अन्तर एक है-दो चेतन हैं और एक जड़ है। कैसे पहचानते हैं कि यह चेतन है, यह जड़ है? जिसके अन्दर इच्छा हो, सुख हो, दु:ख हो, राग हो, द्वेष हो, कुछ अच्छा बुरा लगता हो तो

चेतन होगा और एक पत्थर को आप बाहर डाल दो, वो कभी यह नहीं कहता कि मुझे गर्मी लग रही है, मुझे सर्दी लग रही है। जो चेतन है, उसमें क्रिया होती है, इच्छा होती है, अनुकूलता, प्रतिकूलता होती है, सुख-दु:ख होता है प्रश्न ये उठेगा कि ये सब ईश्वर में भी होना चाहिए? परन्तु राग-द्वेष आदि ईश्वर में नहीं होता, क्योंकि राग-द्वेष, सुख-दु:ख अभावों का नाम है। मतलब जहाँ कमी है, उस कमी को दिखाने के लिए ये बातें होती हैं। जहाँ कमी हो ही नहीं, जिसके पास सब कुछ है वो किसकी इच्छा करेगा? इच्छा उसकी होगी जिसके पास कोई चीज नहीं होगी। दु:ख उसका होगा जिस चीज की कमी होगी। राग उसका होगा, जिसकी प्राप्ति नहीं होगी। उसे कौनसी चीज प्राप्त नहीं है? कौनसी चीज उसे मिली हुई नहीं है? कौनसी चीज उसकी इच्छाओं से परे है? इसलिए उसको कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह पूर्ण है, आनन्दस्वरूप है। इसके लिए हमारे पास सिद्धान्त का कौन-सा मन्त्र है भला? "**द्वा सुपर्णा सयुजा....अभिचाकशीति**"

परिपूर्ण है तो वह दो नहीं हो सकते। जहाँ दो होंगे वहाँ पूर्णता नहीं होगी। एक कल्पना करके देखें-दस आदमी हों तो ताकतवर होते हैं कि नहीं होते? फिर ईश्वर १० हो जाएं तो ज्यादा ताकतवर नहीं होंगे?एक बड़ा होगा, एक छोटा होगा, एक ज्यादा होगा, एक कम होगा। हम समझते हैं कि हमारी संख्या बढ़ने से हमारी क्षमता बढ़ेगी। हम दो आदमी कम हैं और १० आदमी ज्यादा हैं। पर एक बात यूँ सोच के देखो ना कि एक आदमी का एक ही बेटा है, एक आदमी के ५ बेटे हैं, तो संपत्ति कितनी बँटेगी? तो कम हुआ कि ज्यादा हुआ? विभाजन हो जाएगा ना? तो यदि ईश्वर एक से अधिक होगा तो वो बड़ा नहीं हो सकता, वो पूरा नहीं हो सकता, पूरा तो वही हो सकता है जो एक हो। जो एक नहीं है, वो कभी पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि एक जगह दूसरा है, एक जगह पहला है। तो दूसरी जगह पहले से खाली हो गई, पहली जगह दूसरे से खाली हो गई। इसलिये पूर्ण होने के लिए एक होना अनिवार्य है। कोई यह समझे कि ज्यादा ईश्वर हो जायेंगे तो ज्यादा काम हो जाएगा, यह तो ऐसा ही है कि मजदूर ज्यादा लगाओ तो काम ज्यादा करा लो। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि यह अल्पज्ञ के साथ होता है, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् के साथ नहीं होता, हमारे यहाँ दूसरी मान्यता-ईश्वर एक है, तो मनुष्य भी एक ही है क्या? प्राणी तो एक नहीं है। प्राणी तो अनेक हैं। कैसे पता लगता है कि प्राणी अनेक हैं। लोग कहते हैं हमारी तुम्हारी आत्मा तो एक ही है तो हम-तुम एक हैं। इसमें आपत्ति क्या है?

यदि हम एक हों तो एक साथ पैदा होने चाहिएं, एक साथ मरने चाहिएं, एक जैसा सोचना चाहिए। चोरी करनी हो तो सारे चोरी करें, वेद सुनने आए हैं तो सारे ही वेद सुनें, ऐसा तो नहीं होता। कोई सत्त्वगुण में रहता है तो कोई तमोगुण में रहता है, कोई रजोगुण में रहता है। इसलिए ये जीवात्मा अनेक हैं और अनेक हैं इसलिए छोटे हैं, अल्प-शक्ति वाले हैं, अल्प-ज्ञान वाले हैं, अल्प-सामर्थ्य वाले हैं। लेकिन दोनों में समानता है कि दोनों चेतन हैं। जब विभाजन करते हैं तो तीन के दो विभाग बनते हैं जड़ और चेतन। जड़ प्रकृति है। अगर परमेश्वर को भी जड़ मान लें तो क्या परेशानी है?

एक बार की बात है, हमारे भगवान सहाय जी दुकानदार हैं, उनको सौदा बेचने की कम आदत है, उपदेश देने की ज्यादा है। सवेरे घूमने के लिए निकले, उनका एक मित्र मन्दिर में गया हुआ था, परिचित था, पड़ोसी था। उनका मन आया और वह भी अन्दर घुस गए। कहने लगे- अग्रवाल! क्या कर रहा है भई? बोला- मैं भगवान् की पूजा कर रहा हूँ। उन्होंने एक सवाल किया-भगवान् जड़ है या चेतन? आर्यसमाज वाले तो चेतन कहते हैं लेकिन बाहर वाले तो सारे जड़ कहते हैं, क्योंकि चाहे ईसाई का देखो, चाहे मुसलमान का देखो, चाहे किसी का देखो, चाहे हिन्दू का देखो, वहाँ जितने भगवान् हैं वह सबके सब जड़ हैं। सब उसकी पूजा करते हैं और आप कहते यह हो कि परमात्मा चेतन है और जिनको मानते हो वो सब के सब जड़ हैं। तो ईश्वर यदि चेतन है, तो जड़ वस्तुएं ईश्वर नहीं हो सकतीं। जड़ वस्तु की पहचान है कि वो साधन है, उसकी कोई इच्छा, राग-द्वेष कुछ नहीं है। उसको कोई सुख नहीं होता, कोई दु:ख नहीं होता, कोई हानि नहीं होती, कोई लाभ नहीं होता। इस संसार को जब आप देखते हो तो तीन चीजें स्पष्ट दिखाई देती हैं-एक व्यवस्था

है, एक व्यवस्थापक है और एक जिसके लिए व्यवस्था की जा रही है।

एक महिला रसोई में भोजन बना रही है, तो एक तो बनाने वाली है, एक भोजन है। भोजन है, बनाने वाली है, पर खाने वाला न हो तो सब बेकार है। इसलिए जो भोग है, वो प्रकृति है और भोक्ता जीवात्मा है। लेकिन जीवात्मा के बस का तो यह भी नहीं है कि व्यवस्था जुटा ले, इसलिए एक व्यवस्थापक है, जो हमारी व्यवस्था करता है, उसका नाम है ईश्वर।

यदि आपको कोई कहे कि ईश्वर की सिद्धि करो तो कैसे करोगे? समस्या ये है कि ईश्वर आँखों से दिखाई नहीं देता। जब मुझे कोई कहता है कि आँखों से दिखाई नहीं देता इसलिए मानने में कठिनाई होती है तो मैं उनसे बहुत सीधा सा सवाल पूछा करता हूँ। वेदान्त दर्शन में एक प्रकरण आता है- हमारे होने का, हम हैं कि नहीं हैं? हम हैं, कैसे पता, शीशा देखा तो हम दिखते हैं। जब हम पूछते हैं कि क्या हमने अपने को देखा? सब कहते हैं कि जी देखा। मैं आपको देख रहा हूँ, आप मुझे देख रहे हो, इसमें कोई शक है क्या? लेकिन वो शक दूर किस दिन होता है, जब हममें से कोई मर जाता है, उस दिन हम क्या कहते हैं-कि यह देवदत्त है? नहीं, उस दिन हम कहते हैं कि देवदत्त नहीं रहा, चला गया। जिसको आप देवदत्त बता रहे थे, वो शरीर तो है। इसका मतलब, जिसे आप देवदत्त बता रहे थे वो वास्तव में देवदत्त नहीं है।

एक जज साहब थे कोटा में। वो मुझसे यही कहने लगे-भई हम किसी ईश्वर की पूजा करते हैं, उसे देखते हैं। जो देखते हैं, वही तो होता है। मैंने कहा कुछ चीजें ऐसी होती हैं कि दोनों दिखाई दें तो हम मान लें, पर एक दिखाई न दे तो क्या करें? दूसरी को हटाकर देख लो, पहली का पता लग जाएगा। यह जानने का एक तरीका है। इसलिए जिस दिन ये जीवात्मा इस शरीर को छोड़ देता है, उस दिन पता लगता है कि इसमें जीवात्मा शरीर से भिन्न था और उसकी पहचान होती है-बोलता है, चलता है, देखता है, सुनता है, सुखी होता है, दु:खी होता है। जब तक यह शरीर रहता है, कार्य करता है, तब तक हमें पता लगता है कि इसमें जीवात्मा है। कई बार होने से नहीं, काम से भी पता लगता है कि यहाँ कोई था, काम होना बन्द हो गया तो वह नहीं रहा। वैसे ही जब हमको अपना ही पता नहीं है तो आप ईश्वर की लड़ाई कैसे लड़ते हो?

मैं पूछूँ कि आपने अपने को देखा है तो आप यह नहीं कह सकते कि मैंने देखा है। इसके लिए कठोपनिषद् की पंक्ति याद करो, "**पराञ्चिखानि.....इच्छन्**" यह कठोपनिषद् इतनी प्यारी चीज है और उसमें ऐसे सवाल उठाये हैं कि दुनिया में नचिकेता से बड़ा बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं हो सकता। वैसे तो आपने सुना होगा, पर मैं दोबारा आपको सुना देता हूँ। अच्छी चीज दोबारा सुनने में कोई परेशानी नहीं है। जब पूछा जाता है नचिकेता से-भई, वर माँगो तो उसके माँगने का क्रम अद्‌भुत है। उसने पिताजी को यह कहा था कि तुम यह बूढ़ी-बूढ़ी गाएं दान में दे रहे हो जो किसी काम की नहीं हैं। इससे कोई पुण्य लगता है? जो हमारे काम की नहीं, वो दूसरों के काम की भी नहीं, क्या उसको दान देने से कोई पुण्य मिलता है, कोई स्वर्ग मिलता है? ये पाप के काम हैं। आप इसको क्यों करते हो? यदि इसको करते हो तो दुनिया में जो कुछ आप का है सब दे दो। तब उसने सवाल कर डाला "**तात! मां कस्मै दास्यसि इति।**" पिताजी! आप मुझे किसको देने वाले हैं? जब गाय भी आप दे रहे हो तो इसका मतलब अच्छी चीज तो दोगे ही दोगे। पहली बार पिताजी कुछ नहीं बोले, दूसरी बार कुछ नहीं बोले, तीसरी बार पिताजी को गुस्सा आया, पिताजी ने कहा, जा तुझे मैं मृत्यु को देता हूँ। "**मृत्यवे त्वा ददामीति।**"

स्वामी दयानन्द इसको क्या कहते हैं-यह जीवात्मा और परमात्मा का संवाद है। नचिकेता प्रतीक है जीवात्मा का और यमाचार्य प्रतीक है परमात्मा का। वहाँ तीन प्रश्न हैं और प्रश्नों का क्रम भी बड़ा रोचक है। पहला प्रश्न है कि मेरे पिताजी प्रसन्न हो जाएं। अगर पहले ही परमात्मा माँग लेता और पिताजी को छोड़ देता तो क्या अच्छा होता? शिष्टाचार नहीं होता, न्याय नहीं होता। स्वामी दयानन्द जैसी बात कोई दूसरा साधु नहीं कर सकता। वहाँ एक प्रश्न उठाया है कि माता-पिता हमारी बात नहीं मानते, जबरदस्ती करते हैं, अच्छे काम नहीं करते हैं, बुरी सलाह देते हैं, हमें क्या करना चाहिए?

ऋषि दयानन्द कहते हैं कि उनका गलत कहा हुआ मत करना, पर सेवा से छुटकारा नहीं है। उनकी सेवा जरूर करना। उनकी बुरी बात है तो मत मानना। इतना स्पष्ट जो विभेद है वो ऋषि दयानन्द के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता है। इसलिए वो कहते हैं कि परमात्मा को तो जानना है लेकिन उसके जानने के पहले जानने की पात्रता पानी है और वो पात्रता न्यायसंगत कामों से पाई जा सकती है। इसलिए उसने कहा कि मेरे पिताजी प्रसन्न हो जाएं।

इसमें एक अद्भुत बात है कि दूसरे प्रश्न का उत्तर ही नहीं है। कठोपनिषद् में दूसरे प्रश्न का उत्तर ही नहीं है। ये बात मेरे सामने आई तो मैं जब सोनीपत जाता था तो वहाँ हमारे बहुत विद्वान् पंडित जी आचार्य विजयपाल जी रहते हैं। मैंने उनसे पूछा -आचार्य जी! इसमें दूसरे प्रश्न का उत्तर नहीं है, आप तीन प्रश्न बताते हो। उन्होंने कहा-मुझे तो ऐसा नहीं लगता। मैंने पुस्तक निकालकर बता दी। यह पढ़ लीजिए, दूसरे प्रश्न का उत्तर नहीं है। उन्होंने कहा कि तुम ऐसा करो, दो महीने बाद मैं तुम्हें बताऊँगा। दो महीने बाद उनका पत्र आया कि दूसरे प्रश्न का उत्तर कठोपनिषद् के मूल वेद के दूसरे हिस्से में है और वो कर्मकाण्ड का विषय है, इसलिए उपनिषद् में नहीं है। अन्त में तीसरा प्रश्न आता है कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है? उस समय नचिकेता के साथ सबसे रोचक बात है। आत्मा आपको दीखे या न दीखे, परमात्मा का भरोसा हो या न हो, पर उस संवाद के अन्दर जो रहस्य है, उन तीन प्रश्नों में वो अद्भुत है।

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्षसुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मबीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रयाग के आर्य विद्वान् श्री श्याम किशोर जी तो परोपकारी के प्रत्येक अङ्क के प्राप्त होते ही उसके आर-पार जाकर हमें सारे अंक (विशेष रूप से तड़प-झड़प) पर अपनी प्रतिक्रिया व सुझाव देते हैं। ऐसे ही एक उदीयमान विचारशील उत्साही मिशनरी श्री कार्तिकेय महाराष्ट्र से और स्वामी सम्पूर्णानन्द जी भी प्राय: अपने मनोभावों व सुझावों से लाभान्वित करते रहते हैं। श्री श्याम किशोर जी पूज्य उपाध्याय जी के शिष्य और अनुभवी आर्यपुरुष हैं। आपकी प्रतिक्रिया व सुझावों का अपना ही महत्त्व होता है। तुलनात्मक धर्माध्ययन की दृष्टि से आपने और प्रिय कार्तिकेय ने जो प्रेरणा दी, उससे उत्साह बढ़ा। विदेशों से प्राप्त एक दस्तावेज़ से महर्षि दयानन्द जी की दिग्विजय का कुछ प्रमाण देते हैं।

ईसाइयत का वैदिक रंग- योरोप से प्राप्त ईसाइयों के चिन्तन-मन्थन को पढ़कर आर्यमात्र गौरवान्वित होंगे। इस देश का अन्धविश्वासी अभागा हिन्दू हमारी खोज का लाभ नहीं उठा सकता। इसे ऋषि दयानन्द से, स्वामी श्रद्धानन्द से चिढ़ है। यह सांई बाबा की माला ही फेर सकता है। वेदानुसार कृषि सर्वश्रेष्ठ धन्धा है। क्यों? ईश्वर के सबसे बड़े नित्य अनादि नियम कर्मफल सिद्धान्त को कृषक वर्ग तो स्वभाव से ही मानता है As you sow so shall you reap. आर्य दार्शनिक पं. चमूपति ने अपनी मार्मिक शैली में लिखा है, ''किया हुआ कर्म और बोया गया बीज कभी निष्फल नहीं जाता।''

इस एक वाक्य में पण्डित जी ने कार्य-कारण सिद्धान्त और दयानन्द दर्शन का सार दे दिया है। अब पाठक ईसाइयों के एक दस्तावेज़ के ये शब्द ध्यान से पढ़ेंगे तो अनायास कह उठेंगे कि इसमें तो ऋषि दयानन्द अपना सिंहनाद सुना रहा है। यह उद्धरण ध्यान से पढ़िये।

"The land is the honestest thing in the world, whatever you give it you will get back again," so in a far more certain sense, it is with the sowing of moral seed. The fruit is certain. It may be long before it is seen, but nothing is lost that is faithfully done. If it appears not to-day it will to-morrow, or some to-morrow far away, but it never dies."

इस उद्धरण का सार यह है कि जैसे बोये गये बीज का भूमि पूरी निष्ठा से, ईमानदारी से यथार्थ फल देती है। ठीक इसी प्रकार जो नैतिकता का बीज बोया जायेगा, उसका फल भी आज नहीं तो कल अथवा अगले कल अवश्य मिलके रहेगा। कर्मरूप बीज मरने वाला नहीं।

मित्रो! संसार में कोई भी मत-पन्थ, पुराण, कुरान, बाईबल आदि का इसमें विश्वास नहीं। सब प्रचलित मत सिफारिश से, गंगा नर्मदा स्नान, मन्त्र-तन्त्र, उपवास, नवग्रह पूजन, तीर्थ यात्रा से किये गये पापों का क्षमा होना व स्वर्ग की प्राप्ति मानते हैं। टी.वी. में तिलकधारी गुरु बिना सत्कर्म किये किसी विपदा को भगाने का मन्त्र-तन्त्र बताते हैं, काले कुत्ते के पास आपके दु:ख हरण की शक्ति है। अन्धविश्वास में डूबा संसार ऊपर का उद्धरण पढ़कर जाँच ले, परख ले कि ''ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है, वा नहीं'' सत्यार्थ प्रकाश में उठाये गये प्रश्न का उत्तर ईसाइयत का नया रंग है। निर्विवाद रूप से यह ईसाइयत का वैदिक रंग है।

हमारे नये-नये योगी, योगगुरु और दर्शनाचार्य संसार पर ऋषि दयानन्द और उसकी शिष्य परम्परा की छाप को जानने व प्रचारित करने में रुचि ही नहीं लेते। यदि वे इधर ध्यान दें तो सब में आशावाद व उत्साह का संचार हो। तुलनात्मक धर्माध्ययन से वैदिक धर्म के प्रचार में ठोस लाभ मिलता है। आचार्य रामदेव जी तथा मेहता जैमिनि जी इस दृष्टि से कभी हमारे विद्वानों के आदर्श रहे। उनकी शैली का परित्याग हमारी भारी भूल है।

ईश्वर को छोड़कर सबकी पूजा- देश में ईश्वरेतर की पूजा की अन्धी आँधी चल रही है। राजनेताओं ने इस क्षेत्र में धाँधली मचा रखी है। कभी-कभी ऐसा भय लगता है कि कहीं इस देश में मूर्तिपूजा, जड़पूजा, पेड़पूजा, नदी-नालों की पूजा, मुर्दों व मर्दों की पूजा को अनिवार्य करने वाला कोई कानून लागू न हो जाये। दर्शन तो यह कहते हैं

कि मन के सामने कोई विषय न हो तो ध्यान लगता है। योग की चर्चा सरकार व सरकारी बाबे सारे विश्व में कर रहे हैं, परन्तु एक-एक नेता, क्या सत्ताधारी और क्या सत्ताविहीन सब लीडर सब मन्दिरों, मूर्तियों, नदियों व कब्रों की यात्रायें कर रहे हैं। मूर्तियों की, नदियों की आरती उतारने में कोई पीछे नहीं। नाम गिनाऊँ तो कई जन भड़क उठेंगे। राहुल जो पक्का ईसाई है। सोनिया ने राजीव को ईसाई बनाकर नाम बदलकर फिर शादी की थी। अब राहुल वोटों के लिये मन्दिरों में घूम-फिर रहा है। जो ब्राह्मण दलितों को मन्दिरों में घुसने न देते थे, वही राहुल-सोनिया को सत्ता में लाने के लिये मन्दिरों में सब कर्म-काण्ड कर रहे हैं।

कभी ब्रह्मसमाज के एक नेता ने एकेश्वरवाद, ईश्वर की ही उपासना तथा मूर्तिपूजा के खण्डन पर ऋषि का व्याख्यान सुनकर कहा था, ''मेरा तो सारा जीवन ही व्यर्थ गया।'' क्यों? ''इसलिये कि मैंने तो कभी इतनी कड़ाई से मूर्तिपूजा आदि का खण्डन नहीं किया।'' आज इसी दृढ़ता-इसी भावना और इसी जोश से धर्म प्रचार की आवश्यकता है।

एक सिख परिवार मलेरकोटला में कब्र-पूजा करके लौट रहा था। वहाँ तो कामनापूर्ति के लिये धन्यवाद देकर परिवार लौटा। घर पहुँचने से पहले ही सभी दुर्घटनाग्रस्त होकर मर गये। कौन देश की आँखें खोले। राम मन्दिर पर नई-नई घोषणायें हो रही हैं। डंका सांई बाबा का बज रहा है। प्यारा राम तो पिछड़ गया है। स्थिति वही है जो विश्व युद्ध में अंग्रेजों की थी-

कदम हिटलर का बढ़ता है, फतह इंग्लिश की होती है

टी. वी. का बटन दबाकर नये-नये भगवानों व अन्धविश्वासों का धुँआधार प्रचार सुन लीजिये।

कुछ इधर की, कुछ उधर की- आर्यसामाजिक पत्रों में छपे लेखों की ओर कई बन्धुओं ने ध्यान खींचा है। क्या करें? क्या लिखें? बहुपठित लेखक 'मुँह ज़बान' इतिहास लिख देते हैं। सम्पादक जी के ज्ञान का अपना क्षेत्रफल ही जब चिन्ताजनक हो तो इतिहास शास्त्र क्या करे? उदयपुर से छपने वाले मासिक में हमारे माननीय अशोक जी ने एक पुस्तक से पं. गणपति शर्मा जी का कश्मीर का शास्त्रार्थ छापा है। उस पुस्तक के लेखक थे तो ज्ञानी, परन्तु बिना प्रमाणों के मिलान के 'मुँह ज़बानी' लिखने में सिद्धहस्त थे। उस पुस्तक के प्राक्कथन लिखते हुए लिखवाने वालों ने भूलें सुधारने का हमें शीघ्रता में समय ही नहीं दिया।

शास्त्रार्थ का समाचार 'सद्धर्म प्रचारक' के पुराने अंकों से खोजकर हमने छपवा दिया था। शास्त्रार्थ श्रीनगर में हुआ। अशोक जी के पत्र में पं. गणपति शर्मा जी को रघुनाथ मन्दिर जम्मू में पहुँचा दिया। एक से एक बड़ी गप्प छपी है। हम इतिहास प्रदूषण को कहाँ-कहाँ रोकें? कोई अपनी चूक तो माने।

परोपकारी के सितम्बर के अंक में पं. ब्रह्मदत्त जी सोढा का एक पुराना लेख श्री ओममुनि जी ने खोजकर पुनः प्रकाशित करवा दिया है। लेख तो ठोस व उत्तम है, परन्तु इतिहास के क्रम से वह इसे लिखते तो विशेष लाभ होता। स्वामी नित्यानन्द जी और पूज्य विश्वेश्वरानन्द जी के परोपकारिणी सभा से संबन्ध की घटना देते हुए सोढा जी चूक कर गये। दोनों स्वामियों का ऋषि जी के बलिदान के पश्चात् परोपकारिणी सभा के प्रथम उत्सव पर सन् १८८३ में आगमन हुआ। ऋषि के बलिदान के प्रभाव से दोनों आर्यसमाज से और सभा के जुड़ गये। तत्कालीन पत्रों तथा अन्य स्रोतों के आधार पर हम परोपकारी में यह तथ्य दे चुके हैं। अतः यह कथन भ्रामक है कि पं. हमीरमल जी शर्मा ने सन् १८८८ के पश्चात् इनको परोपकारिणी सभा से जोड़ा।

शुद्धि सभा के एक अंक में अन्तिम पृष्ठ पर छपे श्रीमान् गांधी जी का लेख एक सज्जन ने दिखाया। गाँधी जी अपने कमरे में जाकर कुरान, बाईबल आदि देखकर हर उलझन को ईश्वर से पूछकर सुलझाया करते थे। यह मात्र अन्धविश्वास है। मौलाना आजाद केवल कुरान को मानते थे। नेहरू तो नास्तिक थे ही।

'आर्यसन्देश' में छपे भारतीय जी के लेख में कई बातें कल्पित हैं, यथा मथुरा में उपाध्याय जी का अभिनन्दन १९५६ में नहीं हुआ था। उपाध्याय जी सन् १९३९ में प्रयाग स्कूल से सेवा-मुक्त हुये थे, न कि सन् १९३६ में। यह दोष दुर्भाग्यपूर्ण है कि आर्यसामाजिक पत्रों में जिसके जी में जो आता है लिख देता है। 'आर्य मित्र' में एक लेख में एक

कृषक को जन्म से हीन मानकर उसका भोजन ऋषि ने पहले तो खाने से इन्कार कर दिया- यह मनगढ़न्त कहानी है। कोई प्रमाण तो दिया होता। भूल सुधार में हम सबको गौरव होना चाहिये। भूल जताने पर बुरा मनाना, खीजना ठीक नहीं है।

दिल्ली दरबार विषयक कुछ चर्चा- श्री डॉ. रामचन्द्र जी कुरुक्षेत्र एक योग्य युवा विद्वान् का दिल्ली दरबार विषयक लेख बहुत उत्साह से पढ़ा। सोचा था कुछ नया प्रकाश, नई सामग्री मिलेगी, परन्तु लेख में कुछ विशेष नई सामग्री न मिली। उलट जम्मू कश्मीर के दीवान श्री अनन्तराम का नाम 'अनन्तराय' पढ़कर आश्चर्य व निराशा हुई। रामचन्द्र जी ऐसी भूल करेंगे, यह तो सोचा नहीं जा सकता। हम कई बार बता चुके हैं कि पंजाब में अनन्तराय नाम होता ही नहीं। वह पंजाब के ही थे। हमने आर्यवीर मनोज को जम्मू भेजकर महाराज रणवीर सिंह पर प्रकाशित नये ग्रन्थ 'Maharaja Ranbir Singh and His Times' के एक पृष्ठ का छायाचित्र मंगवाकर प्रमाणित कर दिया कि पं. लेखराम आदि व पंजाब के सब जीवनी लेखकों द्वारा लिखा अनन्तराम नाम ही ठीक है। रामचन्द्र जी भी मनगढ़न्त हदीस का शिकार हो गये।

रही बात महर्षि के प्रथम प्रयास की विफलता की तो साहस-शून्य राजाओं से सहयोग की, जुड़ने की आशा ही क्या हो सकती थी। पंजाब से पं. हृदयनारायण का ऋषि मिशन से वहाँ जुड़ना-यह ऋषि की उपलब्धि थी। उन्हें पंजाब का पहला आर्यसमाजी मानना-जानना चाहिये। उनका नाम अवधनारायण नहीं था। ठा. भोपालसिंह का संबन्ध दिल्ली से भी रहा होगा, वैसे वह कर्णवास के थे, यह भूलना नहीं चाहिये। 'Imperial Public Opinion' नाम के पत्र को श्री हृदयनारायण दरबार के समाचार जानने के लिये क्रय करते रहे। राव युधिष्ठिर सिंह रेवाड़ी यहीं से ऋषि की भक्ति का रंग लेकर लौटे थे। तब रेवाड़ी पंजाब में था। इस दृष्टि से उनके रूप में पंजाब हरियाणा को ऋषि ने पहला समाज सुधारक और वैदिक धर्मानुरागी दिया। रामचन्द्र जी जैसा प्रबुद्ध युवक यह विशेष तथ्य कैसे भूल गये? डॉ. रामचन्द्र जैसे युवा विद्वान् को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ऋषि दयानन्द से पत्र-व्यवहार करने का साहस किसी राजा-महाराजा में नहीं हुआ, परन्तु इसका एक अपवाद रेवाड़ी के राव युधिष्ठिर सिंह हुए, जिन्होंने ऋषि को पत्र लिखे। आर्यसमाज के इतिहास में राव युधिष्ठिर सिंह का अवमूल्यन करना भयङ्कर भूल व अक्षम्य पाप है।

श्री जयदत्त जी उप्रैती की नई पुस्तक- मान्य उप्रैती जी ने दाराशिकोह की एक संस्कृत पुस्तिका पर विशेष परिश्रम करके उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया, इनमें स्पष्टीकरण के लिये कुछ टिप्पणियाँ तो हैं, परन्तु बहुत स्वल्प। इस पर और परिश्रम चाहिये था। लेखक दाराशिकोह तीन पदार्थों को अनादि मानता था अथवा दो को या एक को? यह स्पष्ट नहीं हो पाया। वह एकेश्वरवादी था? उसी की उपासना को वेदविहित मानता था अथवा मूर्तिपूजक भी था? बाबा लाल, जिसकी उसमें बड़ी चर्चा व महिमा है, वह तो मूर्तिपूजक था। जिस कुल में मेरा जन्म हुआ-वह उसका अनुयायी था। सृष्टि-नियम विरुद्ध चमत्कारों पर दाराशिकोह के मत का स्पष्ट पता लगना चाहिये।

श्याम भाई का जन्म-स्थान- स्वल्प काल में आर्यसमाज में कई भ्रान्तियाँ फैल गई हैं- यह चिन्ता का विषय है। दक्षिण भारत के एक ही राष्ट्रीय नेता का बलिदान कारावास में हुआ। वह थे शहीद शिरोमणि भाई श्यामलाल जी (डॉ. धर्मवीर जी के नाना लगते थे) हमें दक्षिण की यात्रा में मान्यवर डॉ. राधाकृष्ण जी की कोटि के नेता ने प्रेरणा दी कि श्याम भाई के जन्म स्थान **हल्लीखेड़** की भी यात्रा रखें। उन्हें बताया गया कि भाई जी का संबन्ध तो हल्लीखेड़ से था, परन्तु उनका जन्म स्थान तो भालकी है। डॉ. राधाकिशन जी के पिता, भाई बंशीलाल आदि सब नेताओं के साथी रहे, फिर भी उन्हें सुन-सुनाकर यह भ्रम हो गया।

सन् १९०३ में श्यामभाई की जन्म शताब्दी पर हल्लीखेड़ में उनके ननिहाल वालों ने भी डॉ. ब्रह्ममुनि जी के सामने इस सेवक को यही बात कही। तब उन्हें श्री प्राचार्य कृष्णदत्त जी तथा पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की पुस्तकों के प्रमाण दिये। उनकी सन्तुष्टि हो गई। डॉ. ब्रह्ममुनि जी भी प्रसन्न हुये कि भ्रान्ति-निवारण हो गया।

अब श्री सुभाष जी (प्रधान कर्नाटक सभा) तथा डॉ. राधाकृष्ण जी से कहा कि आगे निकट भविष्य में भालकी, हल्लीखेड़ को भी यात्रा की सूची में अवश्य रखा जावेगा। यह आनन्ददायक बात है कि आर्यपुरुषों को अपने ऐतिहासिक स्थानों के महत्त्व का बोध तो है। हल्लीखेड़, भालकी, हुमनाबाद, घोड़ेवाड़ी, कल्याणी, गुलबर्गा, कमलापुर, यादगीर और जानापुर आर्यनेताओं, आर्य बलिदानियों की कर्मस्थली रहे हैं। ये सब स्थान रक्तरंजित हैं। जीवन की साँझ में इन सब स्थानों की एक बड़ी यात्रा निकालने का सपना ईश्वर कृपा से अवश्य पूरा होगा। आर्य युवकों के बलबूते पर हम ऐसा करके दिखायेंगे। भ्रान्ति-निवारण भी कर दिया जायेगा।

दक्षिण भारत का पहला आर्यसमाजी- 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवन चरित्र' के दूसरे भाग में पृष्ठ ५६३-५६६ तक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय 'दक्षिण भारत का पहला आर्यसमाज' शीर्षक से दिया गया है। यह परिशिष्ट देकर एक नई ठोस जानकारी तो दी ही गई, साथ ही एक बहुत बड़ी भ्रान्ति का भी निवारण हमने कर दिया है। प्राय: यह जाना-माना जाता था कि दक्षिण में मद्रास मैसूर आदि की प्रचार यात्राओं पर जब स्वामी नित्यानन्द जी महाराज गये तब दक्षिण के पहले आर्यसमाज की मैसूर में स्थापना की गई।

हमने पुराने आर्यसामाजिक पत्रों के पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि ऋषि के जीवनकाल में ही सन् १८७५ के अन्त में कर्नाटक के मैंगलूर क्षेत्र में दक्षिण भारत के प्रथम आर्यसमाज की स्थापना हो गई थी। दक्षिण भारत का प्रथम आर्यपुरुष जिसका ऋषि से संवाद हुआ और जिसने ऋषि दर्शन करके, उनके व्याख्यान, उपदेश श्रवण कर अपने घर, अपने प्रदेश लौटकर जाते ही आर्यसमाज स्थापित कर दिया, उसका नाम जानने को सारा आर्यजगत् उत्सुक होगा।

दक्षिण भारत की गत यात्रा में इस घटना को व्याख्यान का एक मुख्य विषय बनाकर कई व्याख्यान दिये। ऋषि जीवन में आर्यपत्रों के आधार पर हमने उसका नाम **श्री रङ्गपामंगीश शर्मा** लिखा है। देश हितैषी अजमेर का फरवरी १८८५ का अङ्क हमारे सामने है। इसमें उस आर्यवीर का नाम रंगमा मंगेशमंजेश्वर छपा है। ऋषि जीवन में हमने 'मंजेश्वर' भी उसके नाम के साथ दिया है।

अब इसके साथ एक नया आनन्ददायक समाचार हम आर्यजनता को देते हैं। माननीय डॉ. धर्मवीर जी तथा आदरणीय विरजानन्द जी ने ३१-१२-१८७८ को पंजाब से लिखा ऋषि जी का एक पत्र खोज निकाला। यह पत्र उन्हें सम्भवत: ऋषि के कागजों से ही हाथ लगा होगा। इस पत्र में महर्षि उस उत्साही वेदनिष्ठ आर्य युवक का नाम 'गोपामंगश मौजेश्वरकर' लिखते हैं। लगता है कि महर्षि के पत्र में लिखा नाम ही शुद्ध होगा। कर्नाटक के आर्य पुरुषों यथा डॉ. राधाकृष्ण जी, श्री सत्यव्रत जी, स्वामी ब्रह्मदेव जी इस पर पूछताछ करके और प्रकाश डालकर कृतार्थ करें। श्रद्धेय पं. सुधाकर जी अजमेर आये तो इस नाम की प्रामाणिकता का पता चल जायेगा। ऋषि जीवन से आर्यसमाज के इतिहास से जुड़ी इस महत्त्वपूर्ण घटना की खोज पर हमें बहुत गौरव है।

विशेष सूचना

परोपकारी-पत्रिका के सभी पाठकों एवं आर्यजनों से निवेदन है कि डॉ. धर्मवीर जी से सम्बन्धित कोई पत्र, चित्र, ऑडियो, वीडियो आदि आपके पास हों तो कृपया हमें सूचित करें।

डॉ. धर्मवीर जी के जीवन पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका के लिए जिन भी महानुभावों के पास उनसे सम्बन्धित कोई भी संस्मरण, विचार या कविता आदि हों, वे भी अतिशीघ्र सभा को भेजने का कष्ट करें, ताकि आपके लेख स्मारिका में प्रकाशित किये जा सकें।

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४

ई-मेल-psabhaa@gmail.com

परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर-३०५००१ (राज.)

भावनात्मक एकता-दार्शनिक चिन्तन

आचार्य उदयवीर शास्त्री

एकता और उसका आधार-

'भाव' या 'भावना' ये पद एक ही अर्थ को कहते हैं, जिसका सम्बन्ध अन्तरात्मा से है। मोटे शब्दों में इसे 'विचार' कह दिया जाय, तो कुछ अनुपयुक्त न होगा। यह शब्द सर्वसाधारण की समझ में आता है; तो 'भावात्मक' या 'भावनात्मक' एकता का अर्थ हुआ-विचारों की एकता। विचार के क्षेत्र या आधार अनेक हैं, वह सदा किसी 'विषय' पर सवार रहता है। वही उसका क्षेत्र है। यद्यपि 'विचार' मानव की बपौती समझा जाता है, पर जहाँ तक साधारण अनुकूलता-प्रतिकूलता का प्रश्न है, इसका कुछ अंश प्राणिमात्र में देखा जाता है। भय का अनुभव और उसके प्रतिकार की भावना प्राणिमात्र में रहती है। व्यक्तिगत रूप से चाहे यह प्रत्येक प्राणी में भले ही हो, पर आश्चर्य की बात है कि कहीं तिर्यक् प्राणियों में यह भावना सामूहिक रूप में भी देखी जाती है। इसका आधार भय और उससे अपनी रक्षा करना तथा जीवन-निर्वाह का साधन जुटाना है। इससे एक सूत्र निकलता है-संसार में जीना और अपने-आपको सुरक्षित रखना भावनात्मक एकता का आधार है।

एकता और मानव-समाज-

मानव-समाज में यह विचार बहुमुखी होकर प्रवाहित हुआ है। जीवित वर्ग में मानव सर्वोच्च प्राणी है, अत्यन्त प्रतिभाशाली। संसार की समस्त विभूतियाँ इसी के लिए हैं। अपनी प्रतिभा से पार्थिव ऐश्वर्यों पर इसने आधिपत्य जमाया है। यह भावना जितना अधिक विस्तार पाती है, संघर्ष उतना ही अधिक उभरकर ज्वाला की तरह ऊपर आता है। भय और सुरक्षा की भावना के पीछे बैठा स्वार्थ इनको सुलगाया करता है। जहाँ स्वार्थ की समानता रहती है, वहाँ भावनात्मक एकता अंकुरित हो आती है। कल्पना कीजिए, दस, बीस, पचास, सौ, पाँच सौ, हजार व्यक्तियों ने मिलकर एक व्यवसाय-कार्यक्रम चालू किया। जिन व्यक्तियों का उस व्यवसाय से सीधा सम्बन्ध है, उनकी एकमात्र भावना यही रहती है, इससे उनको लाभ हो, यदि यहाँ परस्पर उनका कोई क्षुद्र स्वार्थ नहीं टकराता, तो वे सब मिलकर लाभ का उपाय सोचते हैं, उस दिशा में उनका एक विचार है, एक लक्ष्य है, एक कार्यक्रम है, सब कन्धे-से-कन्धा मिलाकर लक्ष्य को पूरा करने में परिश्रम करते हैं। जिन व्यक्तियों को उस कार्यक्रम से सुविधा पहुँची है, उनकी कुछ बाधाओं का निवारण होता है, कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वे उस कार्यक्रम के सहयोगी हैं। कार्यक्रम के संचालक-वर्ग के पीछे उनका बल है। वे चाहते हैं, उनकी सुविधा बनी रहे, उनकी आवश्यकता की पूर्ति होती रहे। वे उस कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं को सहन नहीं करेंगे। यह 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बढ़ गया, यद्यपि उनका उद्देश्य भिन्न है, एक लाभ चाहता है, दूसरा सुविधा और आवश्यकता की पूर्ति। यह एकता चलती रहेगी तब तक, जब तक इनमें कोई टकराव नहीं होता। टकराव का अवसर आता है।

एक व्यवसाय में किसी वर्ग को आकर्षक लाभ होता देख, लोभ सिर उठाता है। उससे अभिभूत होकर दूसरा समुदाय उसी व्यवसाय को पहले वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा कर देता है। संघर्ष चालू हो गया, यह टकराव उस समय उग्र रूप धारण करता है, जब सहयोगी वर्ग देखता है कि माल वैसा ही आ रहा है, पर दाम एक जगह कुछ कम हैं, वह उधर को झुक जाता है। यह टकराव यदि दोनों व्यवसाय-वर्गों का पारस्परिक सहयोग होकर समाप्त होता है, तो वह मिलकर सहयोगी वर्ग (जनता-भोक्ता) को खाता है, यदि ऐसा नहीं होगा, तो जनता दोनों में से एक को बैठा देती है। यहाँ आकर 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बदल जाता है। यदि दोनों व्यवसाय-वर्ग एक राष्ट्र के हैं, तो पहली बात अधिक सम्भव है, यदि भिन्न राष्ट्रों के हैं, तो दूसरी बात की अधिक संभावना रहती है। यहाँ फिर 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बदलता है। एक राष्ट्र की जनता अपने राष्ट्र के उत्पादन को अनेक अवस्थाओं में निम्न स्तर का रहने पर भी अधिक मूल्य देकर लेने को

तैयार रहती है। यहाँ एकता का लक्ष्य राष्ट्र है, इस भावना में अपने स्वार्थ की कुछ उपेक्षा हो जाती है, राष्ट्रीय स्वार्थ उभर आता है। स्वार्थ होते हुए भी उसका क्षेत्र विशाल है, उसमें कुछ त्याग की एवं उदारता की भावना अन्तर्निहित है, इसलिए वह प्रशंस्य है। एकता की भावना का क्षेत्र जितना अधिक विशाल होगा, उतना अधिक प्रशस्य, क्योंकि उसमें त्याग विस्तृत और स्वार्थ संकुचित हो जाता है। जब स्वार्थ समस्त राष्ट्र में बदल जाता है, तो मानो वह अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। स्वार्थ का संकोच एकता के क्षेत्र को विशाल बनाता है, इस आशय को एक नीतिकार ने इस प्रकार प्रकट किया है-

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

यदि कुल की रक्षा के लिए एक व्यक्ति का परित्याग करना पड़े, तो कुल की रक्षा करना अच्छा है। यदि पूरे ग्राम की रक्षा के लिए एक कुल का त्याग करना पड़े, तो ग्राम की रक्षा करना श्रेष्ठ है। यदि समस्त जनपद (राष्ट्र) की रक्षा के लिए कोई एक ग्राम जाता है, तो उसे जाने दे, जनपद की रक्षा करे। इस व्यवस्था में 'बहुजनहिताय', 'बहुजनसुखाय' की भावना निहित है। श्लोक के चतुर्थ चरण में जो बात कही है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसमें कहा गया है, कि 'आत्मा' की रक्षा के लिए पृथिवी तक का त्याग कर दे। आत्मा की रक्षा क्या? आत्मा का हनन न होने देना। यह स्थिति 'भूमिगत' होने से प्राप्त नहीं होती। अपनी कॉन्शेन्स को न मारने देना, अन्तरात्मा के सदसद्विवेक को नष्ट न होने देना ही 'आत्मा की रक्षा' है। इस प्रकार से जब आत्मा के विनाश की स्थिति उपस्थित हो, तो इस पृथिवी को छोड़ देना, संसार से चले जाना, जीवन का विसर्जन कर देना अच्छा है। तात्पर्य यह है कि जीवन में यदि ऐसा अवसर आ जाय कि अपनी कॉन्शेन्स को मारे जाने के मुकाबले में जान की बाजी लगी हो, तो जान को जाने दे। अपनी अन्तरात्मा की सदसद्विवेकिता की रक्षा की जानी चाहिए। यह भावनात्मक एकता का मूल स्रोत है, यदि यही सूख गया, तो एकता का कहीं पता नहीं लगता। फलतः स्वार्थ का जितना संकोच होगा और त्याग का जितना विस्तार होगा, एकता का क्षेत्र उतना ही बढ़ता चला जायेगा। कोई एक ऐसा मुद्दा हो सकता है, जिसके आश्रय से मानवमात्र का समाज एकता की दिशा में अग्रसर होने के लिए पग बढ़ाए, पर उसकी व्यवहार्य दशा का विवेचन सदा संसार में एकता का बाधक रहा है। वह मुद्दा व्यक्ति के अन्तरात्मा की आवाज है, जिसको पकड़ लेना हर एक के लिए आसान नहीं।

एकता के अनेक आधार-

जैसा कि पहले कहा, एकता सदा किसी एक ही आधार को लेकर उभरे, ऐसा नही है। इसके अनेक आधार रहते हैं और बदलते रहते हैं। राष्ट्र, धर्म, समाज, अर्थ, भय, बाधा या विपत्ति आदि ये सब विभिन्न अवसरों पर भावनात्मक एकता के आधार बनते हैं। यह स्थिति मानव-समाज में अधिक सम्भव है। कारण यह है कि मानव-समाज के प्रखर-बुद्धि होने से इसकी प्रवृत्तियाँ सदा बहुमुखी रहती हैं। विचार बुद्धि का परिणाम है और विचार विषय के अनुसार सदा बदला करता है, इसलिए एकता के क्षेत्र को भी वह बदल देता है।

एकता किसी भी क्षेत्र में हो, महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय-एकता पर विचार कीजिए, किसी भी राष्ट्र का मानव-समुदाय व्यक्तिगत रूप से अनेक विभिन्नताओं को रखता हुआ भी राष्ट्र के नाम पर एक पंक्ति में आ खड़ा होता है, यद्यपि धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टियों से भले ही वह विभिन्न लघु वर्गों में बँटा हो। ऐसी भावना के उभरने का स्पष्ट रूप तभी सामने आता है जब राष्ट्र पर कोई भय या विपद् उपस्थित हो। इसी प्रकार धर्म, समाज, अर्थ, राजनीति, व्यवसाय, उद्योग आदि विभिन्न लघु-क्षेत्रिक मुद्दों के आधार पर भी एकता की भावना स्पष्ट व्यवहार में देखी जाती है। धर्म एक होने पर भी अनेक राष्ट्रों में आर्थिक व राजनीतिक भेदों के कारण परस्पर घोर सङ्घर्ष की दशा उपस्थित हो जाती है, पर जब कहीं उनके धर्म पर चोट आती है तो उनका स्वर एक होता है। यदि कहीं राजनीतिक या आर्थिक दृष्टिकोण प्रबल है तो एकता की भावना के उभार में धर्म की उपेक्षा हो जाती है।

ऐसे अनेक अवसर रहते हैं जब एकता के उभार के लिए सामाजिक दृष्टिकोण प्रबल होता है। मान लीजिए एक गाँव, नगर या मुहल्ले पर कोई आपत्ति आ गई, आग

लग जाए, बहती (बाढ़) आ जाए, रोग फैल जाए, गन्दगी रहती हो, शिक्षा या चिकित्सा आदि की सुविधा प्राप्त करनी हो तो उस गाँव, नगर या मुहल्ले में जितने निवासी हैं, इन बाधाओं के हटाने और सुविधाओं को प्राप्त करने की दिशा में एकजुट हो प्रयत्नशील देखे जाते हैं, यद्यपि वे निवासी विभिन्न धर्म, जाति, राजनीतिक विचारों एवं निम्नोन्नत आर्थिक स्थिति के होते हैं। एक ही गाँव, नगर या माहौल में रहने से उनका एक समाज है, चौबीस घण्टे और दिन-रात का साथ व पास-पड़ोस है। प्रत्येक का साधारण सुख-दु:ख आपस में गुंथा हुआ है। यह दृष्टिकोण सामाजिक आधार पर एकता को उभार लाता है। इसका रूप यदि विशाल और राष्ट्र-व्यापी हो जाए तो एकता का क्षेत्र विस्तृत हो जायेगा, इसका विस्तार मानवमात्र के समाज तक सम्भव है। राष्ट्रों की सह-अस्तित्व की भावना का यह एक आधार है। भारतीय दर्शन के आदर्श-'एकता में अनेकता और अनेकता में एकता' के तथ्य का यही स्वरूप है।

वास्तविक एकता कहाँ है- राष्ट्र की कल्पना है- एक जैसे शासन-सूत्र में संचालित व शासित मानव-समाज। उसमें अनेक विचार, अनेक धर्म, विविध प्रकार के वर्ग और रहन-सहन सम्भव हैं। केवल धर्म के आधार पर राष्ट्र नहीं, राष्ट्रों के आधार पर धर्म-केवल राष्ट्रधर्म होगा, आध्यात्मिक-धर्म नहीं। राष्ट्र ऐहलौकिक या इस वर्तमान जीवन से सम्बद्ध है, पर धर्म वर्तमान जीवन के बाद जो-कुछ है, उस सबको अपने अन्दर समेटता है। धर्म जीवन का विष नहीं, अमृत है। भ्रष्टाचार सब जगह विष है, चाहे वह धार्मिक हो या राजनैतिक, आर्थिक या व्यावसायिक, वास्तविक धर्म की भावना भ्रष्टाचार को पनपने नहीं देती, क्योंकि धर्म अध्यात्म को पवित्र करता है। रोटी, कपड़ा, रहना ही सब कुछ नहीं, जीवन इनके अतिरिक्त है, ये सब जीवन के लिए हैं, जीवन इनके लिए नहीं। धर्म से ओत-प्रोत जीवन एक दिव्य-जीवन है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य अपने परिवार, पत्नी, बच्चों और धन आदि ऐहिक साधनों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का परित्याग कर कहीं एकान्त स्थान में चला जाए, यह तो एक ज्वलन्त त्यागमयी सेवा एवं विश्व के साथ निष्काम अनुराग की भावना है, जिसमें मानव के साथ सङ्घर्ष की छाया भी नहीं आती।

सबसे प्रेम करना, यथावश्यक सबकी सेवा करना, सुख-दु:ख में सहभागी बनना, व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या-द्वेष व घृणा का परित्याग करना, अपनी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार आकांक्षा रखना, जिसकी प्राप्ति अपने लिये असम्भव हो उसके महत्त्वाकांक्षी न बनना, ये सब ऐसी भावनाएँ हैं, जो अन्तस् को पवित्र बनाती हैं एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ईश्वर एक है, सबके लिए वही एक है, पर मानव उसके नाम की आड़ में कट मरता है, यह ईश्वरीय-एकता का दोष नहीं, यह केवल मानव की अपनी दुर्बलताओं का परिणाम है जो आन्तरिक पवित्रता और धार्मिक-भावना के अभाव में उभरती हैं। हम ईश्वर को चाहे किसी नाम से पुकारें, किसी रूप में उसका ध्यान करें, पर वह ईश्वर प्रत्येक अवस्था में एक है। सूर्य, चन्द्र, तारे सबके एक हैं। पृथ्वी पर रहते हुए उसी हवा में सब सांस लेते हैं, पर पृथ्वी को हमने बाँटा, मानव ने बाँटा, यह सङ्घर्ष मानव ने खड़ा किया, इसके लिए ईश्वर को कोसना समझ में नहीं आता। प्राणिमात्र के प्रति स्नेह-भावनाओं का उभारना अपने और सबके अभ्युदय का आधार है। भावनाओं के इस स्तर को यदि पकड़ा जा सके, तो उसका परिणाम एकता के सिवाय और कुछ नहीं। इसका व्यवहार्य रूप ही मानव को चुनौती है। केवल घोषणा से इसको पाना एक सपना है, इसका बीज अन्तस् में रोपना होगा। बाल्यकाल से नैतिक-शिक्षा ही उसका अनुकूल वातावरण है। दुष्टों को दण्ड स्नेह की जड़ का सींचना है। इसके लिए सबका जागृत रहना अपेक्षित है।

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८**

जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ५.४१

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वनानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

आर्य जनता से आह्वान

आचार्य धर्मवीर जी का परोपकारिणी सभा के लिये एक स्वप्न था। ऋषि के स्वप्नों को पूरा करने का स्वप्न। ऋषि ने जिन तीन उद्देश्यों के लिये सभा की स्थापना की, उन उद्देश्यों को पूरा करने का स्पप्न। इसके लिये वे दिन-रात लगे रहे। जीवन के अन्तिम ६९ वें वर्ष में भी एक थैला दायें कन्धे पर और एक बायें कन्धे पर लिये महीनों एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करते उन्हें देखा जा सकता था। जब वह अपने अथक परिश्रम से बने भव्य पुस्तकालय, गुरुकुल, ऋषि दयानन्द की प्रकाशित पुस्तकों और सभा के दिनोंदिन बढ़ते, सफल होते कार्यों को देखते तो लगता था कि पूरी दुनिया का सुकून, सुख, शान्ति व मुस्कान उनके चेहरे पर उतर आई है। ऋषि के स्वप्नों, उद्देश्यों का विजयरथ अपनी पूर्णगति से दौड़ रहा था कि अचानक सारथि की सांसें रुक गईं।

पर क्या ये रथ रुकेगा? क्या ऋषि के स्वप्न स्वप्न रहेंगे? नहीं। आचार्य थे तो आर्यजनता उन्हें ऋषि के कार्यों का प्रतिनिधि मानकर मुक्तहस्त से सहयोग करती थी। आज जब वो नहीं है, पर उनके द्वारा अपने गौरव को प्राप्त हुई ऋषि की उत्तराधिकारणी सभा है, जिसे उन्होंने पुन: आर्यों की आशा का केन्द्र बनाया। ऋषि के कार्य में, वेद के कार्य में आर्यजनता सभा को भरपूर सहयोग दे, ताकि ये विजयरथ यूँ ही बढ़ता रहे। इसके लिए धर्मवीर जी की स्मृति में स्थिरनिधि बनाई गई है। आइये इसमें एक आहुति हम भी दें। - **सम्पादक**

आप भी बनिये
अतिथि यज्ञ के होता

डॉ. धर्मवीर

ऋषि उद्यान स्थित अनुसन्धान भवन के निर्माण के प्रसंग में वास्तुकार मान्य माणकचन्द जी रांका से परिचय हुआ। अनुसन्धान भवन का निर्माण हुआ, स्वामी ओमानन्द संन्यास आश्रम का निर्माण हुआ, ऋषि उद्यान के सौन्दर्यकरण का कार्य चल रहा है। इन कार्यों को करते हुए उन्होंने ऋषि उद्यान के कार्यों को तथा परोपकारिणी सभा की गतिविधियों को निकट से देखा और परखा है। समय-समय पर वे अपने मार्गदर्शन और सुझावों से अवगत कराते रहते हैं।

भोजनशाला की छत डल रही थी और उनसे विचार-विमर्श चल रहा था। उस समय रांका जी ने पूछा कि आश्रम में १०० व्यक्ति नियमित रहते हैं, अतिथि आते रहते हैं तथा शिविरों का कार्य भी चलता है और गोशाला में छोटे-बड़े ६० पशु हैं, इतने विस्तृत कार्य के लिए साधन जुटाने की आवश्यकता है, इस पर आपको तुरन्त ध्यान देना चाहिए। साथ ही उन्होनें इसका उपाय सुझाते हुए परामर्श दिया, आपको बड़ी रकम और बड़े लोगों के भरोसे नहीं रहना चाहिए। जनसामान्य को अपने साथ जोड़ने का प्रयास करना होगा। उन्होंने अपने सुझाव के रूप में जो बात कही, वह हमारी समस्या का उचित समाधान है इसमें कोई सन्देह नहीं। आपने कहा-हमें ऐसे लोगों को जोड़ना चाहिए जिसमें अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी हो और उन पर अधिक भार भी न पड़े। जैसे प्रत्येक परिवार दस रुपये प्रतिदिन भी सहायता के लिए निकाले तो वर्ष भर में तीन हजार छ: सौ रुपये होते हैं। इस प्रकार पाँच सौ सदस्य भी हमारे सहयोगी बनते हैं तो हमारा दैनन्दिन व्यय आसानी से पूरा किया जा सकता है, इसके लिए उन्होंने पहले सहयोगी सदस्य के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्री रांका जी के सुझाव की उपयोगिता और महत्ता का मुझे अनुभव है। गत जुलाई मास में मैं जब बिलासपुर छत्तीसगढ़ गया था तो पूर्णाहुति के दिन मुझे सुखद आश्चर्य हुआ जब बसन्त साड़ी सेन्टर के मालिक श्री विक्रमादित्य गुप्त जी के बड़े पुत्र सुधीर कुमार जी ने एक गुल्लक मँगवाई और कहा आचार्य जी आपने गतवर्ष अतिथियज्ञ की समस्या

का समाधान करते हुए कहा था कि प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं। फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाये? तब मैंने कहा था-कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में, गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दिया जाये-इस प्रस्ताव को उन्होंने अपना लिया और गुल्लक बनाकर उसमें प्रतिदिन कुछ राशि डालनी शुरु कर दी, जो यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन साढ़े तीन हजार रुपये से अधिक थी। उक्त राशि परोपकारिणी सभा को गुरुकुल के लिए प्रदान कर दी, इस प्रकार अतिथि यज्ञ भी सम्पन्न हुआ और सभा का सहयोग भी।

इस प्रकार गत दिनों विश्व वेद सम्मेलन में भाग लेने के लिए उज्जैन गया तो वहाँ की आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री ओमप्रकाश अग्रवाल भोजन के लिए अपने घर ले गये और भोजन के उपरान्त अपने अतिथि यज्ञ की गुल्लक से ग्यारह सौ रुपये सभा के लिए प्रदान किये।

इस प्रकार इस अतिथियज्ञ की प्रभावकारिता स्पष्ट है, तब जतना-जनार्दन से निरन्तर सहयोग प्राप्त करने का यह श्रेष्ठ उपाय है। मान्य रांका जी के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए निश्चय किया गया कि अधिक से अधिक व्यक्तियों को इस अतिथि यज्ञ का होता बनने के लिए प्रेरित किया जाये, आपसे प्रार्थना है आप स्वयं तथा अपने परिचितों व मित्रों को इस अतिथि यज्ञ का होता बनने के लिए प्रेरित करें।

सभा कि ओर से निर्धारित राशि ५१००/- रु. है। यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है। अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे, इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आपसे प्रार्थना है अपना नाम, पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथियज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिवर्ष अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर।

आचार्य धर्मवीर स्थिर निधि

१. श्री जगदीश शर्मा, जयपुर, २. श्री सुभाष नवाल, अजमेर, ३. डॉ. दिनेश शर्मा, अजमेर, ४. श्री वासुदेव आर्य, अजमेर, ५. आचार्य ओमप्रकाश, आबूपर्वत, ६. श्री किशनलाल गहलोत, ७. डॉ. एस.के. सिंह, महाराजगंज, ८. श्री आनन्द प्रकाश आर्य, पानीपत, ९. श्री ओमप्रकाश शर्मा, चण्डीगढ़, १०. श्री नर्मदा शंकर व्यास, होशंगाबाद, ११. महर्षि दयानन्द आश्रम, जमानी, १२. माता देवकंवर, जैसलमेर, १३. श्री विजय भाटिया, दिल्ली, १४. श्री हरीश खुराना, दिल्ली, १५. डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, नई दिल्ली, १६. श्री जवाहर आर्य, बरेली, १७. श्री रामशरण एवं आचार्य धर्मवीर, बदायूँ, १८. आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, १९. आचार्य शतक्रतु, झज्जर, २०. श्री केशाराम सुपुत्र श्री जैताराम, पाली, २१. श्री त्रिदीप भण्डारी, जोधपुर, २२. श्री सुमेधा कैलाश सत्यार्थी, नई दिल्ली, २३. श्री ओममुनि, ब्यावर, २४. श्री रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर, २५. श्री रमेश पाहूजा, यमुनानगर, २६. आर्यसमाज मॉडल टाउन, यमुनानगर, २७. आचार्य अमरदेव मीमांसक, खुन्टुनी, ओडिसा, २८. स्वामी सोम्यानन्द, दिल्ली, २९. श्री रमेश भाई, बुलन्दशहर, ३०. श्री कृष्णकान्त वैदिक, देहरादून, ३१. श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य, करनाल, ३२. श्री सोममुनि, मथुरा, ३३. श्री सुरेन्द्र पाल डाबर, गुडगाँव, ३४. डॉ. रवीन्द्र आर्य, गुड़गाँव, ३५. श्री तपेन्द्र कुमार, जयपुर, ३६. श्री राजेन्द्र सक्सैना, कोटा, ३७. श्री रामजी आर्य, आर्यसमाज, कानपुर, ३८. स्वामी सुबोधानन्द, अनारा , उ.प्र., ३९. श्री वामन दिगम्बर आर्य, अकोला, ४०. स्वामी सम्यक् क्रान्तिवेश, महाराष्ट्र, ४१. श्री नेतराम आर्य, अलीगढ़, ४२. श्री श्रुतिप्रिय शास्त्री, उड़ीसा, ४३. सीताराम आर्य, कानपुर, ४४. आर्यबन्धु, बेहटा, ४५. नरेन्द्र आर्य, बैंगलोर, ४६. श्री पूर्णानन्द नैनपाल, उ.प्र., ४७. सतीश देव आर्य, गुरुसहायगंज, ४८. श्री रजनीश बंसल, दिल्ली, ४९. आचार्य सौम्य, गाजियाबाद, ५०. आचार्य सुदर्शन देव गुरुकुल, हरिपुर, ओडिशा, ५१. आचार्य रामदयाल, मधुबनी, ५२. श्री श्यामलाल खरवानी, आर्यसमाज, अहमदाबाद, ५३. श्री छत्रपाल वैदिक, मुरादाबाद, ५४. श्री विजयकुमार सिंह, रायबरेली, ५५. श्री सुरेन्द्रपाल सिंह, बागपत, ५६. श्रीमती सुमित्रा आर्य, नोएडा।

शङ्का समाधान - १२

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का-१. आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें, तो समिधा तीन और मन्त्र चार क्यों?

२. एक ही मन्त्र "**ओ३म् अयं त इध्म आत्मा...**" से पाँच आहुतियाँ क्यों दी जाती हैं?

३. स्विष्टकृत होमाहुति घृत या भात की हो अथवा लड्डू-पेड़ा-बर्फी, हलवा आदि भी डाल सकते हैं?

४. मंगल कार्य में वामदेव्यगान अवश्य करें या यज्ञ प्रार्थना करनी चाहिए?

वन्दना शास्त्री, गुरुकुल दाधिया

समाधान-१. समिधा-तीन, मन्त्र चार- यह आपकी ही नहीं, अपितु अनेक व्यक्तियों की शङ्का है कि समिदाधान के समय महर्षि ने तीन समिधाओं के लिए चार मन्त्रों का विनियोग किस आधार पर किया है? विद्वज्जन अपने-अपने ढंग से कल्पना-मूलक (कई बार रोचक भी) समाधान भी करते हैं। यहाँ केवल शास्त्रीय पक्ष प्रस्तुत है-

वेद की प्रत्येक शाखा के अपने श्रौत व गृह्यसूत्र हैं। अधिकांशत: इनमें प्रक्रिया भेद भी उपलब्ध होता है, किन्तु यह भेद विरोध न होकर स्व-स्व शाखा की अपनी-अपनी पद्धति है। किन्हीं भी दो सूत्र ग्रन्थों के किसी संस्कार आदि को आप मिलाकर देखेंगे, तब यह वैभिन्त्र्य अथवा विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देगा। इसलिए प्राय: याज्ञिक स्वशाखा का अवलम्बन कर कर्म सम्पादन करते हैं। सम्प्रति वस्तुस्थिति यह है कि दक्षिण भारत, जहाँ कुछ शाखाओं का प्रचलन है, वहाँ भी कर्मकाण्ड किसी एक शाखा के अनुसार न होकर स्वतन्त्र मिश्रित पद्धतियों के आधार पर सम्पन्न हो रहा है।

महर्षि दयानन्द विहित विधि किसी एक शाखा का आश्रयण नहीं करती है, क्योंकि महर्षि शाखा की अपेक्षा संहिता को अधिमान देते हैं। महर्षि ने सभी सूत्रग्रन्थों से स्वाभीष्ट मन्त्र एवं विधि ग्रहण कर अन्य सूत्र निरपेक्ष विधि प्रदान की है। जिस प्रकार अन्य कल्पकार अपनी विधि तथा मन्त्र विनियोग करते हैं, उसी प्रकार महर्षि का स्वतन्त्र विनियोग है। महर्षि दयानन्द को एक कल्पकार की दृष्टि से देखने पर विनियोग एवं प्रक्रियागत विरोध का सामञ्जस्य हो जाता है। अर्थात् यह महर्षि विहित किसी एक शाखा (शाखानुसारी कल्प=श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र) पर आधृत न होकर समन्वयात्मक है। इसी दृष्टि से समिदाधान का प्रसंग विवेच्य है।

समिधा-३, मन्त्र-१/२-सर्वप्रथम पारस्कर गृह्यसूत्रान्तर्गत उपनयन के अंगभूत समिदाधान को देखें- वहाँ अग्नि परिसमूहन के पश्चात् पर्युक्षण कर '**अग्नये समिधमाहार्षं.....भूयासं स्वाहा**' मन्त्रपूर्वक समिदाधान विहित है-"**प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्तिष्ठन्त्समिधमादधाति अग्नये समिधमाहार्षं बृहते.....भूयासं स्वाहेति। एवं द्वितीयां तथा तृतीयाम्। एषा त इति वा समुच्चयो वा।**" -पा.गृ. २.४.३-५

उक्त '**अग्नये समिधमाहार्षं...**' **मन्त्रपूर्वक ही द्वितीय तथा तृतीय समिधा का आधान करणीय है। अग्रिम सूत्र में मन्त्र का विकल्प है कि 'अग्नये समिधमाहार्षं' इस मन्त्र के स्थान पर-**

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि।। -यजु. २.१४

यजुर्वेदीय मन्त्र द्वारा प्रथम, द्वितीय, तृतीय समिधा का आधान करे अथवा दोनों मन्त्रों (अग्नये समिधमाहार्षं. तथा एषा ते.) से क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय समिदाधान करे। अर्थात्-प्रथम पक्ष में एक ही मन्त्र से तीन समिधा। द्वितीय पक्ष में मन्त्र विकल्पपूर्वक एक ही मन्त्र से तीन समिधा तथा तृतीय पक्ष में दोनों मन्त्रों से क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय समिधा का आधान करे।

इस प्रकार पारस्कर मत में एक मन्त्र से तीन समिधा अथवा दो मन्त्रों के समुच्चयपूर्वक मन्त्रयुग्म से तीन समिधा का आधान कर्त्तव्य है। इस स्थिति में **यह द्वन्द्वाहुति पक्ष पारस्कर का अभिमत पक्ष है।**

सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र ३.७.१८ में अग्निहोत्र की व्याख्या करते हुए एक, दो अथवा तीन समिदाधान का विकल्प है।

वहाँ पर समिधा की संख्या जो भी मानी जाए, किन्तु मन्त्र **'एषा ते अग्ने समित्.....'** (यजु. २.१४) एक ही है।

वाराह श्रौतसूत्र १.४.३.१ में ब्राह्मणादि वर्णों के आधार पर तीन समिधाएँ मानते हुए भी क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती छन्दस्क मन्त्रपाठ का विधान है। वैखानस श्रौत १.६ भी वाराह श्रौत का अनुकरण करता है।

समिधा-१, मन्त्र-१-आश्वलायन गृह्यसूत्र १.१०.१२, जैमिनि गृह्यसूत्र १.३ तथा भारद्वाजगृह्यसूत्र १.४ आदि स्थलों पर 'अयन्त इध्म आत्मा.' मन्त्र से एक ही समिदाधान वर्णित है।

समन्त्रक चार समिधा- कौषीतक गृह्यसूत्र २.६.६ के अनुसार- समन्त्रक चार समिधा का भी निर्देश उपलब्ध है।

उक्त समिदाधान (एक अथवा एकाधिक समिधा तथा एक या दो मन्त्रों से आवृत्तिपूर्वक तीन समिधा) पृथक-पृथक् संस्कारों (दर्शपौर्णमास आदि यज्ञ भी) आदि के सन्दर्भ में हैं। इन सबको यहाँ देने का अभिप्राय है कि सूत्र ग्रन्थों में एकाधिक समिदाधान विहित है और उनका समिधाओं की संख्या तथा मन्त्रविनियोग का यह वैभिन्न्य स्व-स्व शाखा के कारण है, किन्तु यहाँ प्रश्न अग्निहोत्र (क्योंकि स्मार्त्त वैश्वदेव तथा श्रौत यज्ञों की परम्परा आर्यसमाज में नहीं है।) के समय क्रियमाण समिदाधान को लेकर है।

अग्निहोत्र आदि के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है- अग्नि। इसकी प्राप्ति के लिए अग्नि का आधान/स्थापन प्राथम्येन अपेक्षित है। इसी आधान (श्रौतसूत्रों में स्वतन्त्र कर्म/यज्ञ है।)का अंगभूत कर्म समिदाधान है। संस्कारविधि सामान्य प्रकरणान्तर्गत स्थाली पाक विधि का अन्तिम वाक्य है-''जब होम के लिए दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रखें और उस पर घृत सेचन करें।''

कात्यायन के अनुसार-स्थाली पाक के मध्य में गर्त (गड्ढा) कर उसमें घृत सेचन करके उस घृत से तीन समिधा को सिक्त करके 'समिधाग्निं....' यजु. ३.१-३ इन तीन मन्त्रों से अर्थात् एक-एक मन्त्र से आधान (समिदाधान) और 'उप त्वा....' यजु. ३.४ इस चतुर्थ मन्त्र का जप विहित है। किन्तु कात्यायन अग्रिम सूत्र से **'सुसमिद्धाय....'** यजु. ३.२ मन्त्र के जप का विकल्प विधान करते हैं। इस स्थिति में यजु. ३.१ (समिधाग्निं...) से प्रथम समिधा, यजु. ३.३ (तन्त्वा समिद्भि...) से द्वितीय समिधा तथा यजु. ३.४ (उप त्वाग्ने...) से तृतीय समिधा का आधान होता है। तब 'सुसमिद्धाय...' इस मन्त्र का जप होगा। अर्थात् समिधा तीन तथा मन्त्र चार हैं। तद्यथा-

उद्वास्याऽऽसेचनं मध्ये कृत्वा सर्पिरासिच्याऽऽश्वत्थीस्तिस्रः समिधो घृताक्ता आदधाति ''समिधाग्नि'' मिति प्रत्यृचम्। ''उपत्वे'' ति जपति। द्वितीयां वाऽध्वर्युः। -का. श्रौ. सू. ४. ८. ३-५

महर्षि दयानन्द ने भी स्थालीपाक/हव्य पर घृत सेचन कर घृतसिक्त तीन समिधाओं के आधान का निर्देश किया है-

''जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट.....एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं-

ओ३म् अयन्त इध्म.....इदन्न मम।। १।।

ओ३म् समिधाग्निं.....इदन्न मम।। २।। इससे और

ओ३म् सुसमिद्धाय.....इदन्न मम।। ३।। इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी

ओ३म् तन्त्वा.....इदन्न मम ।। ४।। इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।''-**संस्कारविधि-सामान्य प्रकरणम्।**

यहाँ पर मन्त्र संख्या २-४ कात्यायनानुसार है, किन्तु प्रथम समिधा के लिए **आश्वलायन गृह्यसूत्र १.१०.१२** द्वारा समिदाधान में विनियुक्त मन्त्र 'अयन्त इध्म आत्मा.....' का विनियोग किया है-

शृतानि हवींष्यभिघार्योदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्येधमभिघार्याऽयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहेति।

जैमिनिगृह्यसूत्र १.३, भारद्वाजगृह्यसूत्र १.४ तथा हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र १.२.१२ में भी 'अयन्त इध्म आत्मा...' इस मन्त्र को समिधा के आधान में विनियुक्त किया है। यहाँ महर्षि ने कात्यायन निर्दिष्ट 'उप त्वा...' यजु. ३.४ इस मन्त्र को छोड़ दिया है। शेष मन्त्र कात्यायन के अनुसार हैं। कात्यायन ने उपत्वा/सुसमिद्धाय को जप मन्त्र कहा है।

महर्षि ने द्वितीय समिधा के लिए 'समिधाग्निं...' तथा 'सुसमिद्धाय...' इन दो मन्त्रों का समुच्चय कर दिया है। दो मन्त्रों का समुच्चय कर आहुति (द्वन्द्वाहुति) देना शास्त्र सम्मत है। यह पूर्व में पारस्कर को उद्धृत कर स्पष्ट किया जा चुका है। साथ ही दोनों मन्त्रों के **'अग्नये स्वाहा' और 'अग्नये जातवेदसे स्वाहा' पदों के सूक्ष्म अर्थभेद पर विचार करें, तब द्वन्द्वाहुति का प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है।**

अग्नि का त्रिस्तरीय विभाजन तथा मध्यम स्थानी देवता का द्विपार्श्वयुक्त होना भी यहाँ द्वन्द्वाहुति का आधार कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ को निरुक्त के दैवतकाण्ड के परिप्रेक्ष्य में भली प्रकार समझा जा सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि तीन समिधाएँ तथा उनके लिए चार मन्त्र अर्थात् किसी एक आहुति के लिए दो मन्त्रों का पाठ शास्त्रसम्मत है। यह विनियोग ऐतरेय ब्राह्मण के शब्दों-'एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्मक्रियमाणमृगभिवदति इति।'-३.२.१३, ३.५.१६ में यज्ञ की रूप समृद्धि है।

२. मन्त्र-१, आहुति-५-'अयन्त इध्म आत्मा...' मन्त्र का घृताहुति में विनियोग महर्षि की अपनी व्यवस्था है। महर्षि से पूर्व आश्व. गृ. १.१०.१२; जैमिनि गृ. १.३; भारद्वाज गृ. १.४ तथा हिरण्यकेशी गृ. १.२.१२ में यह मन्त्र समिदाधान में विनियुक्त है। अर्थात् इस मन्त्र से समिदाधान का विधान है। महर्षि ने इसे समिदाधान में तो विनियुक्त किया ही है, साथ ही तदनु इससे पाँच घृताहुतियों का भी निर्देश किया है। इसके पश्चात् जलसेचन विधि है। इससे यह स्पष्ट है कि तीन समिधाओं का आधान करने के बाद अन्य स्थालीपाक-सामग्री की आहुति देने के लिए यज्ञकुण्ड में जो तापांश अपेक्षित है उसे उत्पन्न करने के लिए अग्नि का तीव्र रूप में प्रज्वलित होना आवश्यक है। अग्नि को प्रज्वलित करने का साधन घृत से बेहतर कोई दूसरा नहीं है। स्वयं वेद मन्त्र कहा रहा है-'घृतैर्बोधयतातिथिम्'. यजु. ३.१

श्रौत अग्निहोत्र में घृतातिरिक्त हव्य का विधान नहीं है। वैसे भी वहाँ एक समय का (प्रातः अथवा सायं) यज्ञ मात्र दो आहुति देकर सम्पन्न हो जाता है। अग्निहोत्र ''अग्निहोत्रं सायम् उपक्रमं प्रातरपवर्गमाचार्या ब्रुवते''-बौधायन २४.३० सायं प्रारम्भ होकर प्रातः आहुति प्रदान कर पूर्ण होता है। अतः दोनों समय की मिलाकर २+२=४ कुल चार आहुतियाँ हैं। गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि पर भी दो-दो आहुतियाँ काम्य यज्ञ की होती हैं। अपराग्न्योः काम्यम् अग्निहोत्रं नित्यम् इत्याचार्याः -वैतान श्रौ. २.३.१६-यह काम्य आहुतियाँ नित्य अग्निहोत्र का अंग नहीं हैं। श्रौत अग्निहोत्र में अग्न्युद्धरण कर दी गई एक समिधा की आहुति पर्याप्त होती है, क्योंकि वह एक समिधा प्रदीप्त हुई और दो आहुतियाँ उस पर दे दीं। न तो वेदी में समिधा चयन है और न ही अधिक आहुति देनी हैं। वेदी में तापांश बढ़ाने के लिए समिधा/घृत अपेक्षित है। महर्षि के अनुसार सोलह आहुति हव्य के साथ देनी हैं, तब अग्नि प्रदीप्त होनी ही चाहिए। यह प्रदीपन अमन्त्रक भी किया जा सकता था, किन्तु वेद की रक्षा, विशिष्ट प्रार्थना के लिए महर्षि ने बुद्धिसंगत विधि प्रदान की और वह भी शास्त्रमूलक। ब्राह्मण ग्रन्थों में **यज्ञ की रूप समृद्धि वर्णित है।** वहां कहा गया है-'एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति, इति'-ऐ. ब्रा. ३.२.१३, ३.५.१६-किसी कर्म को करते हुए तद्विषयक ऋचा का पाठ यज्ञ की रूप समृद्धि है।

अतः 'अयन्त इध्म आत्मा...' मन्त्रपूर्वक **पाँच घृताहुतियाँ अग्नि प्रदीपन के साथ ही मन्त्र में अभिलषित कामनाओं के लिए एक-एक (अर्थात् एक कामना के लिए एक आहुति) आहुति देना यज्ञ की रूप समृद्धि है।** क्रियमाण कर्म के साथ मन्त्रार्थ की चरितार्थता की दृष्टि से महर्षि द्वारा निर्दिष्ट यह विनियोग महर्षि की सूक्ष्मेक्षिका का भी ज्ञापक है।

३. स्विष्टकृत- इषु इच्छायाम् (तुदादि.)+क्त=इष्ट-कामना किया गया, चाहा गया, अभिलषित। अथवा यज् धातु के क्त प्रत्यय, सम्प्रसारण होकर 'इष्ट' शब्द निष्पन्न हुआ है। सु+इष्ट+कृत=स्विष्टकृत। अर्थात् अभिलषित को सम्यक् प्रकार से पूर्ण/प्रदान करने वाला।

श्रौत-स्मार्त्त सर्वत्र स्विष्टकृत आहुति अग्नि को सम्बोधित कर देने का विधान है तथा यह आहुति यज्ञ में एक बार ही दी जाती है। दैनिक यज्ञ में स्विष्टकृत विहित नहीं है। तद्यथा-

अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेत्युत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे जुहुयात्। सकृदेवसौविष्टकृतं जुहोति। - गोभिल गृ. १.८.१४,१८

महर्षि दयानन्द संस्कार विधि-सामान्यप्रकरण में स्विष्टकृत आहुति के विषय में लिखते हैं-''**स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है।** यह घृत अथवा भात की देनी चाहिए, उसका मन्त्र- ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद् विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु में। अग्नये स्विष्टंकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम।। श.प. १४.९.४.२४''

अर्थात् महर्षि भी सौविष्टकृत देव अग्नि को मानकर इसे एक बार ही देना मानते हैं, किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि महर्षि ने जिस मन्त्र को उद्धृत किया है, वह शतपथ ब्राह्मण में इस रूप में उपलब्ध नहीं है। वहाँ पाठान्तर है-

''यत्कर्मणात्यरीरिचम्। यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्वान्त्स्विष्टं सुहुतं करोतु स्वाहेति- श.प. १४.९.४.२४''

शतपथ में यह मन्त्र कृत कर्म के न्यूनाधिक होने पर उसे सुहुत करने की कामना के रूप में वर्णित है, किन्तु इस मन्त्र में प्रायश्चित्त पद तक नहीं है। जबकि संस्कार विधि में पठित मन्त्र (आश्व. गृ. १.१०.२२) में अग्नि को- ''अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्द्धय स्वाहा'' कहकर हुत को सुहुत तथा सर्वप्रायश्चित्ताहुतियों के माध्यम से कामनाओं को समृद्ध करने वाला कहा है। स्यात् इसीलिए महर्षि द्वारा स्विष्टकृत कहने पर भी इसे स्विष्टकृत के साथ प्रायश्चित्ताहुति मन्त्र के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है।

यज्ञ करते समय-अकरण, न्यूनकरण, अतिरिक्तकरण, अन्यथाकरण-इस प्रकार चतुर्विध उपपात-भूलें होना सम्भव है। जिस समय भूल का ज्ञान हो, उसी समय प्रायश्चित्ताहुति देकर अग्रिम क्रिया करनी चाहिए। सूत्रकार प्रायश्चित्त व स्विष्टकृत को पृथक्-पृथक् मानते हैं। किसी एक यज्ञ में प्रायश्चित्ताहुति एकाधिक बार दी जा सकती हैं, किन्तु स्विष्टकृत केवल एक बार।

कात्यायन श्रौतसूत्र २५.१.१०-११ में सर्वप्रायश्चित्ताहुति निम्नवत् हैं-

''सर्वप्रायश्चित्तं च पञ्चभिः प्रत्यृचम्। त्वन्नोऽअग्ने इति द्वाभ्याम् अयाश्चाग्ने...स्वाहा, ये ते शतं वरुण...स्वर्काः स्वाहोदुत्तममिति च।'' अर्थात् -१. त्वन्नो अग्ने..., २. स त्वन्नो अग्ने... ३. अयाश्चाग्ने..., ४. ये ते शतं वरुण..., ५. उदुत्तमं वरुण पाशम्...। ये पाँच मन्त्र सर्वप्रायश्चित्त आहुति मन्त्र हैं। आपस्तम्ब श्रौ. ३.१२.१ में 'यदस्य कर्मण...' को भी सर्वप्रायश्चित्तान्तर्गत रखा गया है।

गृह्यसूत्रकार भी विवाह आदि के अवसर पर क्रियमाण यज्ञ में सर्वप्रायश्चित्त व स्विष्टकृत का पृथक्-पृथक् निर्देश करते हैं। तद्यथा- ''अन्वारब्ध आघारावाज्यभागौ महाव्याहृतयः **सर्वप्रायश्चित्त** प्राजापत्यं **स्विष्टकृच्च** एतन्नित्यं सर्वत्र।'' -पारस्कर गृ. १.५.३-४

स्विष्टकृत के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ध्यातव्य निर्देश निम्न हैं-

१. जिन यज्ञों/संस्कारों में निर्देश न हो, वहाँ स्विष्टकृत नहीं-''नाज्यभागौ न स्विष्टकृदाज्याहुतिष्वनादेशे''-खादिर गृ. १.३.१२

२. अन्त में-स्विष्टकृत आहुति अन्त में (पूर्णाहुति से पूर्व) दी जाती है। यज्ञों एवं संस्कारों में प्रकृत होम प्रक्रिया में जिस स्थान पर होता है, उसे 'आवाप' कहते हैं। प्रायः यह आवाप स्थान आज्यभाग तथा स्विष्टकृत के मध्य में वर्णित है-

क-प्राक् स्विष्टकृत आवापः -गोभिल गृ. १.८.१६

ख-स्विष्टकृदाज्यभागा अन्तरेण आवापः -काठक गृ. ४७.१०

ग-व्याहृतिस्विष्टकृतोः स्थालीपाके -कौषी. गृ. १.५.२८

घ-पारस्कर १.५.५ का मत है कि यदि हव्य घृत से भिन्न हो तब स्विष्टकृत पूर्व और महाव्याहृति पश्चात् हों- प्राङ् महाव्याहृतिभ्यः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः।

३. हव्य- महर्षि ने स्विष्टकृत का हव्य घृत अथवा भात कहा है। सूत्रकार ने भी उक्त दोनों पदार्थों को ही हव्य रूप में प्रतिपादित किया है-

क- स्रुच् में आज्य ले चरुस्थाली से उसमें एक बार चरु/भात लेकर उस पर पुनः घृत अभिघारित कर स्विष्टकृत अग्नि को सम्बोधित (अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा) कर स्विष्टकृत आहुति दे-गोभिल गृ. १.८.१०-१३

ख-प्रधानयाग की हवि-हव्य यदि दूषित हो जाये तो केवल आज्य ही स्विष्टकृत आहुति का हव्य है-इष्टं चेदाज्येन शेषम्- का. श्रौ. २५.५.१४

ग-दर्शपौर्णमास आदि यज्ञों में पुरोडाश, सान्नाय्य आदि पदार्थों के हव्य रूप में प्रयुक्त होने पर स्विष्टकृत आहुति उक्त द्रव्यों से असंसृष्टा=अकृत सम्पर्का होगी- 'असंसृष्टामाहुतिभि:...' का. श्रौ. ३.३.२८-अर्थात् स्रुच् को पुरोडाश/सान्नाय्य आदि से पूर्णतया साफ करके-'घृतेन स्विष्टकृत्' तै.सं.- घृत से स्विष्टकृत आहुति होगी।

इस प्रकार स्विष्टकृत का हव्य महर्षि तथा सूत्र ग्रन्थों के अनुसार घृत अथवा भात/चरु-यह भी घृत मिश्रित-अभिघारित है। लड्डू-पेडा-बर्फी-हलवा की आहुति तो दूर रही, कात्यायन तो स्विष्टकृत के समय इनका स्रुच् से सम्पर्क भी निषिद्ध मानते हैं।

४. **वामदेव्यगान**-किसी भी कार्य के समापन के अवसर पर कोई न कोई विधि/कार्य होता है। सभी संस्कारों के समापन की द्योतक और वह भी सर्वविध शान्ति के लिए मंगलस्वरूप वामदेव्यगान का निर्देश महर्षि ने किया है। महर्षि के अनुसार संस्कारों का यह अन्तिम कृत्य है।

गोभिल १.९.२९ के अनुसार नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों/यज्ञों की पूर्णता पर अन्त में शान्त्यर्थ वामदेव्यगान कर्त्तव्य है-अपवृत्ते कर्मणि वामदेव्यगानं शान्त्यर्थं शान्त्यर्थम्।

सम्प्रति प्रचलित यज्ञ प्रार्थनाएं लौकिक हैं तथा वामदेव्यगान वैदिक है। यदि व्यक्ति समर्थ है तब वैदिक प्रार्थना करे। वेदपाठ में असमर्थ व्यक्ति श्रेष्ठ भाव-भरित प्रार्थना करे, तब कोई हानि नहीं।

पुस्तक परिचय

पुस्तक परिचय- यजुर्वेद शतक (शब्दार्थ, भावार्थ एवं काव्यानुवाद)

काव्यकार- श्री बाबूलाल जोशी

प्रकाशक- गोविन्दराम हासानन्द ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

मूल्य - ५०/- **पृष्ठ संख्या** - ९६

भारतीय संस्कृति में वेद एवं वैदिक साहित्य का स्थान सर्वोपरि है। वेदों में अपार ज्ञान है। यह ज्ञान ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। याज्ञिक प्रक्रिया के कारण चारों वेदों में यजुर्वेद का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह वेद कर्मकाण्ड का प्रमुख है। हमारा कर्म श्रेष्ठ हो, इस ओर संकेत है। कर्म प्रधान है। परोपकार कर्म भी यज्ञ की श्रेणी में है। ईश्वर तत्त्व की गहराई इसमें प्राप्त होती है।

काव्यकार ने १०० मन्त्रों का चयन स्वाध्याय के आधार पर किया है। प्रत्येक मन्त्र अपनी विशेष झलक को काव्यमय सरस भाषा में प्रभावित करता है। वेद मन्त्रों को सरस, ग्राह्य भाषा में काव्यमय किया गया है। पाठक सहजता से भाव को हृदयङ्गम कर सकता है। १३,११ की मात्राओं से छन्दबद्ध है।

दृष्टव्य:- भू अग्नि से विद्युत-

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितु: सवे।
स्वर्ग्याय शक्त्या।।

-यजु. ११/२

काव्यानुवाद:-

ये योग तत्त्व के इच्छुको! ज्यों हम योगी लोग।
योग और विज्ञान शक्ति का, करते हैं उपयोग।।
समग्र विश्व सृष्टा प्रभु का, जगत् रूप ऐश्वर्य।
भू प्रकाश से सुख प्राप्ति, शोधित हो युत धैर्य।।

भावार्थ-

हे योग तत्त्व के जानने के इच्छुक जनो! जैसे हम साधक, योगी साधना के लिए, सबको चैतन्य प्रदान करने वाले प्रभु द्वारा प्रदत्त इस संसार में भूमि से प्रकाश प्राप्ति की साधना करते हैं। वैसे ही आप लोग भी किया करो।

सभी पाठकों के लिए उत्तम सामग्री है। मनन पठन, काव्य की सरसता सहज रूप में समझ आ जाती है। काव्यकार का परिश्रम तभी सफल मान्य होगा, जब आद्योपान्त पाठ कर मन्थन करेंगे। मैं काव्यकार के श्रम का साधुवाद करता हूँ। - **देवमुनि**

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित व उपलब्ध नये संस्करण

१. सत्यार्थ प्रकाश में क्या है? लेखक - **प्रो. धर्मवीर,** **प्रकाशक**- परोपकारिणी सभा, अजमेर,
पृष्ठ संख्या- ३२ **मूल्य** - रु. १५/-

प्रस्तुत पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी के युवापन की रचना है। इस पुस्तक को पं. भारतेन्द्रनाथ जी (महात्मा वेदभिक्षु) ने डॉ. धर्मवीर जी से आग्रहपूर्वक लिखवाया था। पहली बार इसे सन् १९७५ में महात्मा वेदभिक्षु जी ने ही प्रकाशित किया था। एक लम्बे अन्तराल के बाद परोपकारिणी सभा ने इसका पुनःप्रकाशन किया है। इस पुस्तक को पढ़कर नये से नया व्यक्ति भी सत्यार्थप्रकाश के महत्व को समझ सकता है अर्थात् यह पुस्तक आर्यसमाज के प्रचार में सहायक सिद्ध हो सकती है। आर्य महानुभावों से अनुरोध है कि इसे अधिक से अधिक संख्या में खरीदकर नई पीढ़ी तथा नये लोगों को वितरित करें तथा प्रकाशकों से भी निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में इसे मंगायें ताकि लोग इसे खरीद सकें। इस ग्रन्थ को पढ़ने से ऋषि दयानन्द के अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने की प्रेरणा मिलती है। सत्यार्थप्रकाश की समस्त विषयवस्तु को इस ग्रन्थ में समाहित किया गया है। पाठक इसे पढ़कर लाभ उठायेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)
मूल्य - रु. ८००/- पृष्ठ संख्या - प्रथम व द्वितीय भाग-६९६+६९६
महर्षि दयानन्द का महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार मूल्य - रु. ४००/- पृष्ठ संख्या - ६१६

ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इस संस्करण की यह विशेषता है कि पत्र और उसका उत्तर साथ-साथ दिये गए हैं। आर्य जाति और आर्यावर्त्त के उत्थान की महती आकांक्षा ऋषिवर के पत्रों में स्पष्ट झलकती है। माननीय डॉ. वेदपाल जी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है। साज-सज्जा और मुद्रण भी उत्तम है। समाप्त होने से पहले- पहले क्रय कर लेवें तो अच्छा रहेगा।

३. 'नवयुग की आहट',महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित
मूल्य - रु. ६०/- पृष्ठ संख्या- १९२

१०० से अधिक उपशीर्षकों एवं १३ अध्यायों में लिखा गया ऋषि का यह अनुपम जीवन चरित है। लेखक हैं- ऋषि मिशन के दीवाने, आर्यजाति के प्रहरी, दिलजले आर्य साहित्यकार प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु। पुस्तक में आप जान पायेंगे कि ऋषि का पाखण्ड-खण्डन, सामाजिक दोषों के निराकरण, स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, वेदोद्धार, सामाजिक पुनर्जागरण, राष्ट्र-उद्धार के क्षेत्र में क्या योगदान है तथा उनके समकालीन और परवर्ती महापुरुष उनके विषय में क्या कहते हैं।

४. इतिहास की साक्षीः लेखक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु **मूल्य - रु. ५०/-** **पृष्ठ संख्या - ९६**

९६ पृष्ठों की इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी के सम्बन्ध में तथ्यात्मक जानकारी दी है। श्रद्धाराम फिल्लौरी के हाथ के लिखे पत्र की एवं अन्य ऐतिहासिक दस्तावेजों की फोटो कापियाँ इसमें दी हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

५. असली महात्मा (हिन्दी) **मूल्य - रु. २००/-** **पृष्ठ संख्या - २४७**

यह पुस्तक मूलरूप से तेलुगु में लिखी गई है। लेखक श्री एम.वी.आर. शास्त्री ने जिस शोधपूर्ण ढंग से और जिस सरसता से इस पुस्तक को लिखा है, उससे दस्तावेजों में रुचि रखने वालों और उपन्यास में रुचि रखने वालों के लिये भी यह एक अतुलनीय ग्रन्थ है। हिन्दी में अनुवाद करते समय श्री जे.एल. रेड्डी ने लेखक के मूल भावों को जिस दक्षता से संजोया है, उससे हिन्दी पाठकों को ये ऐतिहासिक दृष्टि वाला ग्रन्थ किसी उपन्यास से कम नहीं लगेगा।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**
बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**
बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**
IFSC - PUNB0000800

सोलह कलाएँ

प्रकाश चौधरी

शास्त्रों एवं वेदों के अनुसार यह मानव योनि कर्म योनि है और भोग योनि भी है। पूर्व जन्म का फल भोगने हेतु तथा ज्ञान पूर्वक नए कर्म करने हेतु जो दुखों से मुक्ति दिला सकें, मनुष्य जीवन मिलता है। शास्त्र कहता है उत्तम जीवन को सफलतापूर्वक जीने के लिए बहुत बड़ी तैयारी एवं योग्यता की आवश्यकता होती है।

चन्द्रमा को सोलह कलाओं से परिपूर्ण कहा जाता है। उसका घटना-बढ़ना, पूर्णता को प्राप्त होना और अद्वितीय रूप में चमकना, जिसे पूर्णमासी भी कहा गया है, उससे जोड़ते हुए चन्द्रमा की सोलह कलाएं कही गयीं हैं शायद। आध्यात्मिक जगत् में ये सोलह कलाएं ब्रह्म की हैं। प्रभु ने अपनी सोलह कलाओं से इस शरीर को बनाया है। वह स्वयं जीवात्मा की भाँति इस देवनगरी में निवास करता है। जीवात्मा का विकास, जीवात्मा का बल तभी पुष्ट होता है- जब उसकी यह कलाएँ परिपुष्ट होती हैं। आत्मा मानो चाँद की भाँति प्रकाशित हो जाती है। योगिराज श्री कृष्ण को सोलह कलाओं वाला कहा जाता है। स्वामी दयानन्द जी सोलह कलाओं से पूर्ण माने जा सकते हैं क्योंकि वे महान् आत्माएँ अपने ज्ञान, अपने कर्म, अपने बलशाली शरीर, आत्म-बल से परिपूर्ण थे। कोई भी आत्मा जिसमें निम्न सोलह गुण हैं वह चाँद की भाँति प्रकाशित होती है। उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व और प्रभाव होता है जो उसे अमर बना देता है। उसे लौकिक और पारलौकिक दोनों सुख प्राप्त होते हैं। मनुष्य जीवन का लक्ष्य उस परम परमेश्वर तक पहुँचना है। इन कलाओं से परिपूर्ण व्यक्ति ही इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। वे कलाएँ क्या हैं?

१. प्राण- प्राण और जीवात्मा का सम्बन्ध मनुष्य और उसकी परछाई जैसा है। प्राण ही है जो जीवात्मा के साथ ही शरीर में प्रविष्ट होता है। प्राणों की बलिष्ठता से आत्मा बलिष्ठ है। ब्रह्माण्ड के प्राण ही इस शरीर के प्राणों को शक्ति देते हैं और ये सुचारू रूप से शरीर में कार्य करते हैं। प्रधान प्राण 'अपान' प्राण है जिसके सन्तुलन पर बाकी और प्राण सन्तुलित रहते हैं। इसका स्थान कटि स्थान से नीचे अँतड़ियों में मल-मूत्र संस्थान आदि हैं। अपान और व्यान प्राण के मध्य समान प्राण है-जो अन्न आदि हम खाते हैं उन्हें एकरस बनाये रखता है। व्यान रक्त-प्रवाह में सहायक है। उदान परिणाम है जो मन रूपी यजमान को आनन्द भोग देता है। तात्पर्य यह है कि हमें इन प्राणों के महत्त्व को समझना तथा इन्हें पुष्ट बनाना है, प्राणायाम इसका साधन है।

२. श्रद्धा- श्रद्धापूर्वक यदि ईश्वर चिन्तन हो तो मेधा की प्राप्ति होती है। बिना श्रद्धा के आत्मा में उत्कर्ष नहीं आ सकता (कणाद ऋषि के अनुसार पहिले जानो, फिर आचरण में लाओ, तब वह श्रद्धा बनता है)।

गांधी जी के पास सत्य का बल था। इसी बल पर उन्होंने आन्दोलन किये थे। हरिश्चन्द्र सत्यवादी थे। श्रद्धा का अर्थ है-सत्य को धारण करना, सत्य में आस्था रखना। यह तत्त्व आत्मबल का आधार है। यदि जीवात्मा में इस तत्त्व पर विश्वास नहीं है तो वह केवल मनमानी करेगा। खाओ पियो मौज करो, क्योंकि सत्य पर उसे विश्वास नहीं। क्या है सत्य? परमेश्वर सत्य है, जीव सत्य है, प्रकृति सत्य है, पुनर्जन्म सत्य है, कर्मों का फल सत्य है। व्यक्ति यदि इनके नियमों के अनुसार नहीं चलता तो वो दुर्गति को ही प्राप्त होगा, न उसे लोक का न परलोक का सुख प्राप्त होगा। सत्य बोलने वालों के पास भय नहीं फटकता।

३,४,५,६,७ पञ्चभूत- यह देह जीवात्मा का निवास गृह है जो पाँच भूतों-पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, आकाश से बना है। एक मन्त्र में आता है-हे मनुष्य! तू ऐसे कर्म कर कि संसार की सारी दिव्य शक्तियाँ इसमें निवास करें। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है। मनुष्य के तीनों विकासों में से शरीर का विकास अधिक महत्त्वपूर्ण है। शरीर से ही जीवात्मा अपने सारे कार्य करती व कर्मों के फल आदि भोगती है। पञ्चभूत हमारे अन्दर पुष्ट हों। बाहरी पाँचों भूतों से ही इन्हें ऊर्जा मिलती रहे। इसके लिए मनुष्य को प्रकृति से जुड़ना होगा। सूर्य की ऊर्जा, ताजी

वायु, मिट्टी के कैल्शियम आदि तत्त्व शरीर को पुष्ट बनाते हैं। हमें इनको ग्रहण करना चाहिए।

८. इन्द्रियां- १० इन्द्रियाँ हैं- ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। आत्मा इन्हीं से ज्ञान ग्रहण करती है और कार्य करती है। जीवात्मा का उत्तम होना और न होना इन पर निर्भर है। मनुष्य को यदि यश और कीर्ति पानी है तो इनका सदुपयोग करें। अपनी इस कला से ऐसे कर्म करें कि समाज में यश प्राप्त हो। परोपकारी बनें, हितैषी बनें।

९. मन- मनुष्य अच्छा या बुरा मन से होता है। सब कार्यों का मूल मन है। यह आत्मा का सबसे निकटतम साधन है। मन के हीन होने पर मनुष्य हीन है, मनोबल और अच्छी सोच पर व्यक्ति अच्छा या बुरा है। इन्द्रियाँ भी इसी से जुड़ी हैं।

मन पर जितना नियन्त्रण होता है, उतना आत्मबल, प्रसन्नता, उत्साह आदि की वृद्धि होती है। ज्ञान, कर्म तथा उपासना से रहित मन नहीं रहता। सदैव किसी यथार्थ विषय को मन में धारण किये रहना चाहिए, जिससे कि सद्‌गुणों का विकास होता रहे।

इन्द्रियाँ मन से संयुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करती हैं- कर्म करती हैं। मन न चाहे तो आँखें देख नहीं सकतीं। रण में वीर तलवार नहीं उठा सकता। मन ऐसी कला है जो आत्मा की पूर्णता में अत्यधिक सहायक है। मन एक ऐसी दिव्य भूमि है, विचित्र एवं उर्वरा भूमि है जिसमें छोटा-सा विचार पल भर में हजारों-लाखों गुणा विस्तृत हो जाता है। अच्छे विचारों का बढ़ना आत्मा रूपी चन्द्रमा के लिए यश एवं कीर्तिवर्धक होगा। मन पर नियन्त्रण से दक्षता प्राप्त होती है। एकाग्रता आती है। एकाग्र व्यक्ति ही दायित्ववान् एवं विश्वासी माना जाता है। इसके अतिरिक्त एकाग्रता से स्मृति, स्मृति से निर्णय, निर्णय से व्यवहार की योग्यता प्राप्त होती है। यह कला वास्तव में महत्त्वपूर्ण कला है।

१०, ११. अन्न, वीय- वास्तव में अन्न पर हमारा सब कुछ आधारित है। जितने खाद्य पदार्थ हैं सब अन्न हैं। इसके बिना जीवित नहीं रह सकते। अन्नरूपी कला से ही रक्त, मांस, मज्जा बनते हैं, शरीर पुष्ट होता है और फिर वीर्य में इनकी परिणति होती है। योगी, महात्मा, ब्रह्मचारी, इस वीर्य को खपाकर उत्तम कार्य, कर पाते हैं। स्वामी दयानन्द के आत्मिक तथा शारीरिक बल की कहानियाँ सब ने सुनी हैं। जीवात्मा को निखारने के लिए ये दोनों कलाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। कहावत है-जैसा खाओ अन्न वैसा होता मन।

१२. तप- जीवन में आने वाली प्रतिकूलताओं को योग्यता, पुरुषार्थ और वीरता से अपने अनुकूल बनाना तप है। द्वन्द्व सहन करना तप है। सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख, भूख, प्यास, यश, अपमान जैसी किसी अनुकूलता या प्रतिकूलता में चित्त की समता बनाये रखना तप है। जो प्रतिकूलताओं में बेचैन हो जाते हैं, क्रोध करते हैं, संयम नहीं रख पाते, वे अत्यन्त अपूर्ण मानव हैं। तप दो प्रकार का है-शारीरिक और मानसिक। शरीर को कष्ट देना तप नहीं, द्वन्द्व सहना तप है। उसकी साधना आवश्यक है। मन को विषयों से हटाना तप है (मानसिक तप)। इसी मानसिक तप से योगियों को सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

१३. मन्त्र- आत्मा की पूर्णता के लिए स्वाध्याय, वेद मन्त्रों को अर्थ सहित जानना अति आवश्यक है। इससे व्यावहारिकता तथा आध्यात्मिकता का बोध होता है। विज्ञान का बोध होता है। व्यक्ति जितना बहुश्रुत एवं ज्ञानी होगा, उतना ही पूर्ण होगा। उसका व्यक्तित्व प्रतिभाशाली होगा।

१४. कर्म- व्यक्ति कितना भी ज्ञानी हो, अगर उसके कर्म विपरीत हैं या आचरण से हीन है, वह श्रेष्ठों के समाज से बहिष्कृत माना जाता है। आत्मा की पूर्णता के लिए शुद्ध कर्म की आवश्यकता है। कर्म आत्मारूपी चन्द्र की मुख्य कला है।

१५. लोक- आत्मा का एक लोक तो यह देह ही है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए रहने का स्थान तो चाहिए पर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह सब सुख-सुविधाएँ, ज्ञान, अर्थ सभी इसी समाज से प्राप्त करता है और इसलिए समाज का ऋणी है। समाज और राष्ट्र के प्रति उसके कुछ कर्त्तव्य हैं जो उसे ऋणी बनाते हैं। वह हितकारी एवं परोपकारी बने। राष्ट्र भी उसका लोक है। इहलोक, परलोक, मुक्ति लोक आदि-आदि लोक हैं। सभी लोकों के हित एवं अपने हित के लिए उसे उत्तम कर्म करने होंगे, तभी वह उत्तम मनुष्य या उत्तम योगी कहलायेगा।

१६. नाम- संसार के इतिहास में ऐसे लोग हैं जिनके

'नाम' से लाखों वर्षों के उपरान्त भी प्रेरणा मिलती है। भौतिक शरीर भले ही न रहा हो, परन्तु उनका 'यश' रूपी शरीर अजर और अमर है और इसी का नाम जीवन है। राम, कृष्ण, स्वामी दयानन्द आदि ऐसे व्यक्तित्व हुए हैं जिन्हें कालजयी कहते हैं। सब का कोई न कोई नाम होता है। व्यवहार से, कामों से भी नाम रख दिए जाते हैं (पहचान के लिए) लेकिन नाम का दूसरा अर्थ है 'यश'। जीवित वही है जिसका यश है, जिसकी कीर्ति है, जिसके सद्गुणों एवम् सत्कर्मों का गान हो। मानव जन्म पाकर भी यदि कीर्ति अर्जित नहीं की तो यह जीवन निरर्थक है। नाम भी आत्मा की पूर्णता के लिए एक कला है। स्वामी दयानन्द, राम, कृष्ण ने अपने उत्तम कर्मों के कारण यश प्राप्त किया, आज तक उनका नाम है।

आत्मा के साथ ये १६ कलाएँ तब तक रहती हैं, जब तक वह इस तन में रहती है, आवागमन के चक्र में है। जब यह आत्मा बन्धन से छूटती है, मुक्त होती है तब उसकी ये कलाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। जैसे समुद्र में मिलने पर न कोई गंगा है, न यमुना, न गोमती-सब समुद्र ही हो जाती हैं। उसमें मिल जाती हैं। इसी प्रकार जब जीवात्मा परब्रह्म को पा लेती है तो सब कलाओं को छोड़कर परब्रह्म रूपी समुद्र में पड़कर आनन्दमय हो जाती है, अपने सत्य स्वरूप में आकर आनन्द में लीन रहती है।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने,

जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२४**

जब तक मनुष्य सुख-दु:ख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें।

-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०

विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४२

पराचः कामाननुयन्ति बालाः

तपेन्द्र

आत्म उत्थान का मार्ग तपस्या के काँटों से होकर जाता है, इसीलिए महर्षि ने भरा-पूरा घर-बार छोड़ वर्षों तक ज्ञान प्राप्ति हेतु हिमालय की कन्दराओं से लेकर नर्मदा तट तक भ्रमण किया, कठिनाइयाँ सहीं, कई बार अपने जीवन को दाँव पर लगाया। आध्यात्मिक उन्नति के उपरान्त कार्यक्षेत्र में उतरे तो वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना के साथ-साथ कुरीतियों, असत्यों पर जो कुठाराघात किया- ऐसा इतिहास में दूसरा देखने को नहीं मिलता। उसी अध्यात्म को आत्मसात करने के लिए आप भी समुद्यत हैं। अध्यात्म स्वयं के लिए तो आवश्यक है ही, सब के लिए भी आवश्यक है।

'**तस्मै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा**' तप=शारीरिक नियन्त्रण, दम= मन का निग्रह तथा कर्म=आत्मोन्नति के कार्य-ये ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा हैं, नींव हैं, आधार-स्तम्भ हैं।

कठोपनिषद् कहती है-

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।

- कठ ४.२

भोले लोग बाहर फैली हुई कामनाओं के पीछे दौड़ते हैं, वे आगे-आगे जाती हैं, हाथ नहीं आतीं, ये पीछे-पीछे भागते हैं, पकड़ नहीं पाते। कामनाओं को तो ये क्या पाते, मृत्यु का जाल चारों तरफ फैला पड़ा है, उसी में जा उलझते हैं।[१] क्योंकि-

पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।

- कठ. ४.१

परमपिता परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बाह्यमुखी बनाया है, यही कारण है कि हमारा मन व इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर भागती हैं, भागती-भागती थक तो जाती हैं, परन्तु सन्तुष्ट नहीं हो पातीं। बस यहीं से योग का द्वार दिखायी पड़ता है। सन्तुष्टि कहाँ हैं? सच्चा आनन्द कहाँ है? इन इन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोककर अन्तर्मुखी कर देने में। उपनिषद् कहती है-'आवृत्त चक्षु' हो जाओ। आँखों से बाहर के विषयों को देखना बन्द कर दो। इन्द्रियों को विषयों से मोड़ लो। इसके लिए 'धीर' बनना होगा। यह कार्य कुछेक दिनों का नहीं है। हमारी इन्द्रियों को बाहर के विषयों में जाने की आदत २०-३०-५० वर्षों पुरानी है। उसको पलटकर अन्तर्मुखी बनाने में कुछ समय तो लगेगा ही अतः धैर्यपूर्वक अभ्यास करना है, अन्दर आत्मा की ओर देखना है, उसके लिये एक और भावना होनी चाहिये, वह है- 'अमृतत्वमिच्छन्'-अमरता प्राप्त करने की, उस अमृतत्व को प्राप्त करने की इच्छा। इच्छा जितनी तीव्र होगी, अभ्यास में उतनी प्रगति होगी, अभ्यास में जितनी प्रगति होगी, आत्म-दर्शन उतनी जल्दी होगा।

'धीर' लोग अध्रुवों में ध्रुव की याचना नहीं करते, अस्थिर वस्तुओं से स्थिर को पाना नहीं चाहते, क्योंकि अध्रुवों से ध्रुव को पाया नहीं जा सकता। अतः यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि अस्थिर सांसारिक वासनाओं में विषयों में फँसकर वह स्थिर आत्मा/ब्रह्म प्राप्त नहीं किया जा सकता।

प्रतिबोधविदितममृतत्वं हि विन्दते।

- केन २.३

प्रतिबोध से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त होता है। विषयों की तरफ मुख होना 'बोध' है, आत्मा की तरफ मुख होना प्रतिबोध है।[२] इन्द्रियों को सांसारिक विषय-वासनाओं से रोकने से मन स्थिर होगा, एकाग्र होगा तथा मन एकाग्र होने पर ही आत्म-दर्शन होगा। मन की एकाग्रता यही है कि मन पर बाह्य विषयों का बिल्कुल भी उपराग न पड़े।

कठोपनिषद् में 'सत्यकाम' घोषणा करते हैं '**श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः**' (१.२६) ये सुख-भोग मनुष्य के लिए 'श्वोभाव' हैं-आज हैं कल नहीं। ये इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देते हैं। '**अपि सर्वं जीवितमल्पमेव**'-इन भोगों को भोगने के लिए सारा का सारा जीवन भी बहुत थोड़ा है। जबकि केनोपनिषद् के अनुसार '**आत्मना विन्दते वीर्यम्**'-संसार में फँसने से आत्मा परमात्मा को जानने की शक्ति प्राप्त नहीं होती,

विषयों में फँसने वाला व्यक्ति तो शारीरिक व मानसिक दोनों शक्तियों को क्षीण करता है, उसे आत्मिक शक्ति तो प्राप्त हो नहीं सकती। उपनिषद् के ऋषि इस संसार को- '**नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो**'-सोने की सांकल घोषित करते हैं तथा '**न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:**' कह स्पष्ट करते हैं कि सांसारिक सुख-साधनों से कभी मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता, विषय-भोगों से कभी तृप्ति नहीं हो सकती। इनके भोग से तो सांसारिकता में फँसना ही फँसना है। निकलने का ये मार्ग नहीं है, क्योंकि इस प्रकार के- सांसारिक विषयों में फँसे हुए व्यक्ति को 'साम्पराय' परलोक के साधन यम-नियम आदि पसन्द नहीं आते, फलत: वह उनका पालन भी नहीं करना चाहता।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित:।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

– कठ. २.२४

'जो व्यक्ति दुराचार से नहीं हटा, जो अशान्त है, जो तर्क-वितर्क में उलझा हुआ है, जो चंचल चित्त वाला है, वह उसे (आत्मा-परमात्मा को) प्राप्त नहीं कर सकता। उसे प्रज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है।'[3] आत्म-ज्ञान की ओर पग बढ़ाने का **पहला उपाय है** कि व्यक्ति दुराचार से दूर हो, पाप कर्म ना करे। पाप कर्म शरीर व वाणी से होता है, परन्तु मन में भी पाप कर्म का, दुराचार का विचार ही ना आवे, यह अभ्यास करना है।

दूसरा उपाय है-शान्त होना। योगाचार्यों के उपदेश से, स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त होगा। जिससे जिन अवांछित बातों से मन अशान्त होता है-उसे जानने व उनसे मन को रोकने का रास्ता मिलेगा। हम कई बार आस-पास में होने वाली घटनाओं से बिना कारण अशान्त रहते हैं, जबकि हमारा उनसे सीधा सम्बन्ध भी नहीं होता। यह व्यक्ति कैसे बैठा है? इसे ठीक से बैठना नहीं आता। इसे चलने का सलीका नहीं है, भिड़कर चल रहा है। यज्ञशाला में व्यवस्था कैसे कर रखी है-यह तो गलत है। ये भवन बेतरतीब बनाये हैं आदि-आदि। हम अपने ज्ञान के अनुसार अच्छे-बुरे का आकलन करते हैं तथा जो हमारे अनुकूल नहीं होता, उससे अशान्त हो जाते हैं, जबकि उससे हमारी लाभ-हानि है ही नहीं। यहाँ एक बात ध्यान करने योग्य है-जो चिन्तन, जो कर्म हमें आत्मदर्शन की ओर ले जाने में सहायक हो, वही करना है। प्रत्येक चिन्तन व कर्म करने से पूर्व यह सोचने का बोध यदि आ गया तो समझें, आत्म दर्शन का रास्ता मिल गया।

तीसरा उपाय है- तर्क-वितर्क में नहीं उलझना, समाहित मन होना। आत्म ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है, यह निश्चय प्रमाणों से, स्वाध्याय से, गुरूवचनों से कर लेना चाहिये, क्योंकि निश्चय के बाद ही व्यक्ति उस कार्य को सिद्ध करने में पूरी शक्ति लगाता है। जहाँ मन में निश्चय ही अटल न हो तो वह कार्य आधे मन से होता है, फलत: या तो होता ही नहीं या सम्पूर्णता से नहीं होता। आपने शिविर में आने का दृढ़ निश्चय किया तो आप आ गये। कई ऐसे महानुभाव भी होंगे जो असमाहित चित्त के कारण, तर्क-वितर्क में उलझने के कारण आ नहीं पाये। उनके मन में होगा कि चलें, योग शिविर करना अच्छा है, परन्तु समाहित चित्त न होने से उन्होंने योग-शिविर की बजाय अपने व्यापार के कार्य को, कृषि-कार्य आदि को प्राथमिकता दी और शिविर में नहीं आये। अत: समाहित चित्त के लिए, एकाग्र चित्त के लिए, निश्चय करने वाले चित्त के लिए, तन्मयता से ज्ञान प्राप्त करना है।

चौथा उपाय है- चंचल चित्त न होना। अशान्त चित्त वाला व्यक्ति किसी एक विषय पर टिकता नहीं। आज योगाभ्यास करेगा, जल्दी ही उसे छोड़ देगा, कोई दूसरा काम करने लगेगा, परन्तु आत्मा तो शान्त चित्त से प्राप्त किया जा सकता है। चंचल चित्त में एकाग्रता व निरन्तरता नहीं हो सकती। अशान्त चित्त वाला तो सांसारिक विषयों की ओर ही आकृष्ट होता रहता है। आत्मा का दर्शन तो वही कर सकता है जो-

'यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्क: सदा शुचि:।'

जो विज्ञान वाला है, जिसका आत्मा मन के साथ नहीं, परन्तु मन आत्मा के साथ लगा है- जो पवित्र विचारों वाला है, वह उस उच्च पद को प्राप्त कर लेता है जिससे फिर उत्पन्न नहीं होता।[4] मन हमारा उपकरण है, मन को हमारे अनुसार चलना चाहिये। हमें मन के अनुसार नहीं

चलना है, किन्तु लम्बे समय के विषय भोगों के अभ्यास से मन अपनी इच्छानुसार चलने लगता है। उपनिषद् कहते हैं-यह जीवात्मा 'मध्वदम्' मधु को चखने वाला है। यह मिठास की तरफ जाता है। विषयों की मिठास में कटुता छिपी है, ब्रह्म की मिठास उत्तरोत्तर मीठी होती जाती है। जो मन के वश चलने वाले जीवात्मा के इस स्वभाव को जान लेता है, वह मन को विषयों से रोककर अध्यात्म की यात्रा पर निकल पड़ता है।

जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। उपनिषद् कहते हैं, **'अन्नमयं हि सोम्य मनः'** मन अन्नमय है। इन दिनों में आपको आसन का अभ्यास तत्परता से करना है, क्योंकि बिना आसन की सिद्धि के प्राणायाम व उपासना नहीं हो सकती। अतिरिक्त समय में आपके मन में इधर-उधर के विचार आ सकते हैं, इससे भी तो मन की एकाग्रता व अभ्यास भंग होगा। इस सूचना को तुरन्त प्राप्त करना अध्यात्म की उन्नति में साधक तो है नहीं। अतः मन को इनसे रोककर इस अतिरिक्त समय में 'ओ३म्' का जप करेंगे तो मन जप में लगा रहेगा तथा एकाग्र होगा।

मन एक दर्पण है, इस पर जब तक विषयों का मैल जमा रहेगा, इसमें आत्मदर्शन नहीं होगा। विषयों का मैल हटेगा तो आत्म-दर्शन हो जायेगा। ज्ञान के द्वारा विषयों की निस्सारता समझकर तथा इन्द्रियों व मन का सही दिशा में अभ्यास करते-करते मन एकाग्र हो सकता है एवं एकाग्र मन से ही आत्म-दर्शन हो सकता है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

उस परमात्मा को इस जन्म में जान लिया तो ठीक है, अगर नहीं जाना तो विनाश ही विनाश है-महानाश है।

टिप्पणी

१,२,३,३,५ डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भजन

आचार्य रामसुफल शास्त्री

तज- साँची कहें तोरे आवन से पहिले....................

दयानन्द जी के आने से पहिले,
नाजुक थी हालत हमार भइया।
शिक्षा नहीं थी, दीक्षा नहीं थी,
सब के सब अनपढ़ नर-नार भइया।।

ओ भइया...........

वेदों का पढ़ना फिर सबको पढाना,
वेदों का सुनना और सबको सुनाना।
ऋषिवर से जाना कि वेदों की शिक्षा,
सबको है पढ़ने का अधिकार भइया।।

ओ भइया.........

भारत था ऋषियों का डेरा,
लुप्त ज्ञान फिर से पग फेरा।
हालत सुधर गयी, शिक्षा संभल गयी,
डी.ए.वी. की है भरमार भइया।।

ओ भइया...........

पढ़ लिखकर हम आगे बढ़े हैं,
शिक्षा के बल पर पैरों खड़े हैं।
जीवन निखर गया, सब कुछ बदल गया,
उस योगी का है उपकार भइया।।

ओ भइया..........

'रामसुफल' नित सन्ध्या-हवन कर,
वैदिक रीति से जीवन सफल कर।
सभ्यता भी मिल गयी, संस्कृति भी मिल गयी,
करें आपस में अच्छा व्यवहार भइया।।

ओ भइया..........

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता
(१ से १५ अक्टूबर २०१७ तक)

१. श्री आदित्य स्वामी, बीकानेर २. डॉ. किशोर काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री देवमुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ४. श्री रंजन हाँडा, दिल्ली ५. श्री नाथूलाल त्रिवेदी, भीलवाड़ा ६. श्रीमती प्यारी देवी त्रिवेदी, भीलवाड़ा ७. आर्यसमाज, भीलवाड़ा ८. श्री दीपक कुमार, कोटपुतली ९. श्रीमती तूलिका साहू, बिलासपुर १०. श्रीमती अल्पना कपूर, दिल्ली ११. श्री अंकुर भार्गव, बैंगलूर १२. श्री अग्नीत राजभण्डारी, जोधपुर १३. श्री हीरालाल चावला, नई दिल्ली १४. श्री आदित्य कुमार, दिल्ली १५. श्री रजनीश कपूर/सीमा कपूर, दिल्ली १६. जेनिथ एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली १७. श्री रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर १८. श्रीमती कौशल्या, ऋषि उद्यान, अजमेर १९. कमलेश आर्य, आगरा २०. सुश्री समज्ञा पाण्डे, अजमेर। - **परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम

भारत की इस पावन धरा पर, अनेकों पुरुष महान् हुए।
दो ऐसे महापुरुष महान् हुए एक कृष्ण तो दूसरे मर्यादा
पुरुषोत्तम राम हुए।।
ऐसा युग भारत में आया, भारत ने कृष्ण राम को भुलाया।
ऋषि दयानन्द ने आकर पुनः भारत राष्ट्र को जगाया।।
यदि मेरा ऋषि दयानन्द आया न होता,
वेदों का डंकाया बजाया न होता।
यज्ञ का दीपक जलाया न होता,
पूरी जनता को जिसने जगाया न होता।
छुआछूत का भेद मिटाया न होता,
राम कृष्ण के गुणों को सत्यार्थ प्रकाश में बताया न होता।
कृष्ण आप्तपुरुष-राम मर्यादा पुरुषोत्तम बताया न होता,
तो कौन सीता, सावित्री, रुक्मिणी को याद करता।
हम कैसे यहाँ रामनवमी मनाते,
हम कैसे कृष्ण, राम के गीत गाते।।
आओ आज राम मर्यादा निभाएँ,
अपने जीवन में उनके गुणों को अपनाएँ।
बनें सीता जैसी पतिव्रता नारी,
रहें ऋषि दयानन्द की सदा आभारी।।
मेरे देश में फिर राम-कृष्ण आवें,
लव-कुश जैसे वीर पुत्र पावें।
पुनः देश को हम पावन बना देवें,
विश्व में राष्ट्र को ऊँचा दर्जा दिला दें।।

ऋषि मेला २०१७ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला २७, २८, २९ अक्टूबर शुक्र, शनि, रविवार २०१७ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधा:- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज-** ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है।७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोट:-** किसी प्रकार का आपत्तिजनक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

आर्य जब से हिन्दू बना, मूर्ख बनकर रो रहा।

आर्य प्रहलाद गिरि
(मुख्य पुजारी-निंगेश्वर मठ, आसनसोल)

अनन्त आत्माओं और प्रकृत्ति के तत्वों से भरे इस अनन्त-विस्तृत ब्रह्माण्ड में इन सबका कुशल संचालक (मालिक) वह महान् बुद्धिमान् ईश्वर तो एक ही अकेला है। वही दिलदार-दयालु और अत्यन्त न्यायकारी प्रभु हम सबका माता-पिता भी है। वह इतना बृहद्-विराट् है कि उससे अधिक अन्य कोई कुछ भी नहीं है तथा वह इतना अधिक सूक्ष्म (महीन, व्यापक) भी है कि कण-कण के परमाणुओं में भी व्याप्त है। उसकी इस अजीब मनोहर रचना को देख-समझकर जो प्रबुद्ध-ज्ञानी जन उस रचनाकार-खिलाड़ी-तमाशागर को जान जाता है, वही उसका प्रिय-आत्मीय हो जाता है। कु-परिस्थितिवश साकारोपासी कवि तुलसी भी स्वीकारते हैं-

**''तुझे जाने तेरा हो जाये। ज्ञानी भक्त ही तुझको भाये।।
धर्म दे त्याग, योग दे ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना।।''**

वह अजर, अमर, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द, एक, अखण्ड, अनन्त, अनादि, सर्वस्रष्टा, सर्वेश्वर को इन नैनों से देखा नहीं, समझा और अनुभव ही किया जा सकता है कि- ''जिसकी रचना इतनी सुन्दर, वो कितना सुन्दर होगा''

'ओ३म्' नामक इस निराकार ईश्वर को जो लोग मूर्ति या चित्र बनाकर जल-दूध-फल-फूल-मिठाई-पैसा चढ़ाकर खुश करने के लिये पूजते या पुजवाते हैं, उनसे बड़ा मूर्ख व धूर्त कोई नहीं है।

वह तो सिर्फ योग-यज्ञ-वेदाध्ययन (सच्चाई, ईमानदारी, परस्पर प्रेम, संयम, परोपकार, ध्यान, प्राणायाम, प्रार्थना) आदि गुणों से ही खुश होता है, किन्तु उसके नाम पर मूर्ति-पूजा करने और करवाने में भी शराब पीने-पिलाने जैसा ही मजा मिलता है, इसीलिये इसकी आदत छूटना मुश्किल हो जाता है। बंगाल का पंडित कालाचन्द मोहम्मद फर्मूली (काला पहाड़) बनकर पण्डे-पुरोहितों व इनके चारागाहों (ठगबाजी के अड्डों) को ही मिटा देने को टूट पड़ा था, फिर भी वह मूर्तिपूजा के नशे को पूर्णत: नहीं मिटा सका, यह भी अच्छा ही हुआ। क्योंकि इस्लाम-सा मूर्तिभंजक होना या हिन्दुओं-सा मूर्तिपूजक होना, दोनों खराब हैं। किन्तु इन दोनों के बीच आर्यसमाज का 'जरूरत भर ही चित्र-मूर्तिकला-उपयोगिता-स्मृति-संरक्षक' बने रहना ही सर्वोत्तम है।

पतंगों की भाँति मूर्तिपूजा की चकाचौंध में हिन्दू लोग इतने मूर्ख-आसक्त हो गये हैं कि जिस मिस्र-बेबीलोन और रोम सभ्यता ने मूर्तिपूजा के नशे को जन्म देकर भी आज तौबा कर लिया, उसी की झूँठी धर्मांधता से आज के वैज्ञानिक-युग में भी चिपके हुए हैं।

ध्यान-योग-प्राणायाम-प्रार्थना-वेदपाठ की अपेक्षा भागवत पुराण और मूर्तिपूजा में अन्धाधुन्ध लूट रहे धार्मिक-ठगों को किस कानून से रोककर बताया जाए कि मूर्तिपूजा का जिक्र भारत के किसी प्राचीन साहित्य व इतिहास में भी नहीं है। ये सारे के सारे इन्द्रजाल बुद्धकाल और गुप्तकाल के बाद ही रचे गये हैं। इसके पहले के धर्मग्रन्थों में जरा भी झूँठ लिखा हुआ न था, जबकि बुद्धोत्तर ग्रन्थों-पुराणादिकों में झूँठ की भरमार है। अब धार्मिक कथा सुनने का अर्थ ही हो गया कि मूर्खों-बेशर्मों-शराबियों-से वक्ताओं की हर झूँठ पे हाँ-हाँ करते रहना।

संयोगवश मूर्ख लोग भी कभी-कभी प्रशंसनीय-सफलता पा लेते हैं, तब वे इसी को जीवन भर गाते रहते हैं। आज हम लोग मूर्तिपूजा के ऐसे ही झूँठे चमत्कारों को चिल्लाते रहते हैं।

यदि हम हिन्दू लोग मूर्ख न होते तो लुटेरे धर्मारि गजनी को देखते ही माला छोड़कर हम भाला उठा लेते। आक्रान्ता गौरी को १७ बार क्षमा न करके उसके घर में जाकर मार के, लूटा हुआ सारा सामान ले आते। शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, वीर बन्दा बैरागी, राणा प्रताप आदि वीर सन्तों को नेता (पूज्यादर्श) मानने में काफी देर न करते। दयानन्द को काशी में पत्थर-प्रक्षेप और अन्त में विष देकर न मार देते। अकबर को हिन्दू बनाने से नहीं इन्कारते। स्वधर्मोत्सर्गी ब्राह्मण को कालापहाड़ (बंगाल का भयंकर

हिन्दू द्रोही-१५६५ ई. से १५७२ ई. तक) बनने को न मजबूर करते। १८५७ की क्रान्ति का असफल हो जाना तथा इतना अधिक बलिदान देकर भी तीन खण्डों में मातृभूमि को बँटवा देना और उस पर भी देश-धर्मद्रोही नेहरू को गद्दी दे देना, हिन्दुओं की मूर्खता का ही प्रमाण है। आज भी हमारा एक शंकराचार्य उसी नेहरू का भक्त बना बैठा है, जिसने कैलाश-काश्मीर और तिब्बत को लुटवा दिया। यदि महात्मा पटेल न होते तो हैदराबाद में भी वह हिन्दुओं की आँखों में धूल झोंकने में सफल हो ही जाता। क्योंकि वह 'पण्डित' बच्चों का चाचा भी बन ही चुका था। नेहरु की गद्दारी के पकड़ लेने वाले अपवादस्वरूप हिन्दुओं में एक राममनोहर लोहिया जी की दृष्टि में भी हिन्दू लोग मूर्ख ही होते हैं, वरना राम और कृष्ण को परम-ईश्वर नहीं महापुरुष ही मानते।

वेद, सत्यार्थ-प्रकाश, भारत-भारती, रश्मिरथी, योग दर्शन, मनुस्मृति वा रामायण को छोड़कर भागवत पुराण, हनुमान चलीसा, दुर्गा सप्तशती, सत्यनारायण पोथी को ही धर्मग्रन्थ मानना मूर्खता नहीं तो और क्या है?

यदि हिन्दू समाज मूर्ख न होता तो आर्यसमाज जैसे दुर्लभ हित-चिन्तक हितैषी से दूरी या घृणा नहीं पाले रहता। अपने हिन्दुओं की ऐसी दुरावस्था में भी अपने प्रति अनपेक्षित भाव देखकर आर्यसमाज भी सो रहा है। इसीलिये पठानकोट सैन्य शिविर पर आतंकी हमले के बाद एक आर्यसमाज के कार्यक्रम में पहुँचे हमारे मोदी जी कह बैठे-''यदि हमारा आर्यसमाज जगा होता, तो देश के लोग इस कदर सोये न रहते।''

पुरोहितवाद, जातिवाद, बहुदेवतावाद, मुहूर्तवाद, भाग्यवाद, भाषावाद, कर्मकाण्डवाद आदि मूर्खताओं में फँसकर 'धार्मिक-क्रान्ति' से कतराते हिन्दुओं को देखकर कोई भी सच्चा-हितैषी इसे बुद्धिमान् कहना तो दूर, समझदार भी नहीं कह सकता।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

लोकहित चिन्तन में, गृह-सुख त्यागी,
वेद-ब्रह्म का अनन्य अनुरागी ऊर्ध्वरेता था।
ज्ञानी अद्वितीय, अभिमानी आर्य-सभ्यता का,
जीवन का दानी धर्मग्रन्थ का प्रणेता था।
मन्दिरों में छुपे सर्पवत् दंभियों पे जा-जा,
निर्भय वेद-तर्क दे दे अद्‌भुत विजेता था।
भारत के भाग्य का भविष्यरूप दयानन्द,
शंकर के बाद हिन्दुओं का एक नेता था।

-कवि रामनरेश त्रिपाठी

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

संस्था-समाचार

आचार्य डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला- परोपकारिणी सभा के प्रधान आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के बलिदान के एक वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर परोपकारिणी सभा द्वारा शुक्रवार ६ अक्टूबर को सायंकाल ४ बजे ऋषि उद्यान स्थित यज्ञशाला में यज्ञ व्याख्यानमाला (प्रथम) का आयोजन हुआ। कार्यक्रम का संचालन सभा मन्त्री **श्री ओममुनि** ने किया। सभा के प्रचारक भजनोपदेशक **पं. भूपेन्द्रसिंह** ने भजन सुनाकर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। उन्होंने डॉ. धर्मवीर जी पर स्वरचित गीत सुनाया- ''धर्मवीर जी धर्मवीर थे धर्मवीर पद पाया है, छः अक्टूबर प्रात समय वो दर्द भरा दिन आया है........।'' कवि **डॉ. नन्दकिशोर काबरा** ने डॉ. धर्मवीर जी के कार्यों और जीवन पर आधारित स्वरचित कवितापाठ किया- ''ज्ञान के मधुसिक्त चन्दन वन! तुम्हें शत शत नमन। कर्म के फलयुक्त नन्दन वन! तुम्हें शत शत नमन।।'' सभा के युवा सदस्य **डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार** ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर जी हमारे मध्य नहीं है- इस कड़वे सत्य को हमें स्वीकार करना होगा, और कोई उपाय नहीं है। वे नहीं हैं, लेकिन उनका दर्शन, उनका व्यक्तित्व, उनकी विचार-शैली हमारे लिये प्रकाशपुञ्ज की तरह है। उनकी पहचान कोई गोत्र, उपाधि, पदवी, पुरस्कार, सम्मान नहीं है। परोपकारिणी सभा और ऋषि उद्यान का यह परिसर उनकी एकमात्र पहचान है। ऋषि दयानन्द के कार्यों को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिये वे दृढ़संकल्प थे, राग-द्वेष से रहित और स्पष्टवादी थे। उन्होंने लोगों के गुणों के साथ दोषों को और दोषों के साथ गुणों को स्वीकार किया। उनमें अहंकार नहीं था। वे राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक समस्याओं के समाधान पर निरन्तर चिन्तन करते रहे। मुख्य वक्ता **डॉ. ज्वलन्त कुमार** ने कहा कि डॉ. धर्मवीर जी ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के योद्धा थे, सेनापति थे। वे महर्षि दयानन्द जी से प्रेरित थे, उन्होंने अपनी युवावस्था और पूरा जीवन महर्षि द्वारा स्थापित आर्यसमाज के कार्यों हेतु न्यौछावर कर दिया। लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा से रहित सफेद वस्त्रों में संन्यासी थे। परिवार के मोह से अलग थे। पण्डित लेखराम के सच्चे उत्तराधिकारी थे। गोरक्षा, आर्ष गुरुकुल की उन्नति, देश-देशान्तर में भ्रमण और व्याख्यान द्वारा वेद-प्रचार तथा वैदिक साहित्य के प्रकाशन में अन्तिम समय तक तन-मन-धन से लगे रहे। **श्री तपेन्द्र वेदालङ्कार** ने कहा कि डॉ. धर्मवीर जी कभी अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्य और परिवार पर विशेष ध्यान नहीं देते थे। मैं उनसे जब भी मिला, वे सदा आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा की बात करते थे। न रात देखते थे, न दिन देखते थे, आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा के लिये विश्राम किये बिना ही चलते ही रहते थे। उनका जीवन वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित था। महर्षि दयानन्द के दीवाने थे। हम उनके कार्यों को अपने पूरे सामर्थ्य से आगे बढ़ायें। वे कभी अतीत नहीं होंगे। अपने कार्यों से हमेशा जीवित रहेंगे। सभा के संयुक्त मन्त्री **डॉ. दिनेश शर्मा** ने कहा कि डॉ. धर्मवीर जी संगठन के हित में लोगों के साथ संवाद करने के लिये हमेशा तैयार रहते थे। उन्हें आर्यसमाज के प्रचार की धुन थी। वे परोपकारिणी सभा के सदस्य से लेकर प्रधान पद को अपने लिये संसार की सबसे बड़ी पदवी मानते थे। उन्हें अन्य किसी पद, प्रतिष्ठा, सम्मान की नाममात्र भी इच्छा नहीं थी।

कार्यकारी प्रधान **डॉ. सुरेन्द्र कुमार** ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि वेदप्रचार, गोरक्षा, आर्ष-शिक्षा, गुरुकुल और आर्यसमाज आदि महर्षि दयानन्द के लक्ष्यों की पूर्ति के लिये उनका जीवन समर्पित था। उनका अप्रत्याशित आकस्मिक निधन सभी को आहत करने वाला था।

इस अवसर पर श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर', आचार्य सत्यजित्, कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल उपस्थित रहे।

योग शिविर सम्पन्न-०८ से १५ अक्टूबर तक आयोजित इस शिविर में महाराष्ट्र के बसई, शोलापुर;

उत्तरप्रदेश के अलीगढ़, सोनभद्र, बस्ती, सहारनपुर, सन्त कबीरनगर, एटा, मेरठ, लखनऊ, हनुमानगढ़, आगरा, बागपत, आजमगढ़, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, मथुरा; उत्तराखण्ड के देहरादून; बिहार के मधुबनी, पूर्वी चम्पारण; गुजरात के भुज; हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा; हरियाणा के चण्डीगढ़, रेवाड़ी, फरीदाबाद, सोनीपत, जीन्द, पंचकूला, रोहतक, हिसार, करनाल; मध्यप्रदेश के देवगढ़; दिल्ली के नजफगढ़, नांगलोई; तेलंगाना के निजामाबाद, उड़ीसा के सदानन्दपुर; राजस्थान के जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, नागौर, केकड़ी, जोधपुर, बालोतरा, बाड़मेर आदि विभिन्न नगरों से १०९ शिविरार्थियों ने भाग लिया। प्रात: काल ४.०० बजे से रात्रि ९.३० बजे तक प्रतिदिन नियमित दिनचर्या में सभी शिविरार्थियों ने पूर्ण मौन और अनुशासन का पालन करते हुए ध्यान-उपासना का अभ्यास किया। सभा मन्त्री श्री ओम्मुनि एवं सदस्य श्री तपेन्द्र वेदालङ्कार आठों दिन शिविर में उपस्थित रहे। आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर से पधारे योग साधक स्वामी केवलानन्द जी ने प्रतिदिन प्रात:काल सन्ध्या-उपासना करवायी। ब्र. वरुणदेव ने आसन, व्यायाम करवाये। प्रात:कालीन यज्ञ के पश्चात् जमानी (इटारसी) से स्वामी अमृतानन्द जी एवं स्वामी केवलानन्द जी के प्रवचन होते रहे। प्रातराश और थोड़ा विश्राम के पश्चात् स्वामी अमृतानन्द योग के विषय में व्यावहारिक ज्ञान देते, तत्पश्चात् स्वामी मुक्तानन्द जी ने सभी शिविरार्थियों को योग दर्शन पढ़ाया। दोपहर की कक्षा में आचार्य सत्येन्द्र श्लोक और संध्या मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करवाते। उसके बाद स्वामी आशुतोष जी योग से संबन्धित शंकाओं का प्रतिदिन समाधान करते थे। सभी शिविरार्थी आधा घण्टा प्रतिदिन श्रमदान करते थे। सायंकाल ध्यान-उपासना स्वामी अमृतानन्द ने करवाया। सायंकालीन यज्ञ के पश्चात् जयपुर से पधारीं श्रीमती कुसुम व आचार्य सोमदेव का प्रवचन कार्यक्रम हुआ। भोजन और भ्रमण के पश्चात् ४५ मिनट आत्मनिरीक्षण की कक्षा में स्वामी आशुतोष जी मन के दोषों को स्वयं जानकर उसे दूर करने का उपाय बताते थे। अन्तिम दिन सभी शिविरार्थियों ने अपना-अपना अनुभव सुनाया और निज दोषों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों को छोड़ने का संकल्प लिया। शिविर की समाप्ति पर शिविरार्थियों ने अजमेर के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया। शिविर की दिनचर्या और ध्यान-उपासना के अभ्यास को घर पर भी नियमित करते रहने के निश्चय के साथ सभी अपने-अपने स्थानों को प्रसन्नतापूर्वक लौट गये। शिविर सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

ऋषि मेले की तैयारियाँ पूर्ण-सभा मन्त्री श्री ओम्मुनि की अध्यक्षता एवं श्री वासुदेव के संयोजन में ८ अक्टूबर को ऋषि उद्यान में विभिन्न समितियों के पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं की पुन: बैठक हुई। पिछले माह १७ सितम्बर को सम्पन्न बैठक में अधिकारियों, कार्यकर्ताओं को दिये गये कार्यों की समीक्षा की गयी तथा ऋषि मेले के प्रचार हेतु बचे हुए कार्यों को शीघ्र पूर्ण करने का निर्णय लिया गया। मुख्य द्वार के निकट भूमिगत पार्किंग के ऊपर ऋषि उद्यान के नये कार्यालय का निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है। मुख्य द्वार की मरम्मत, साज-सज्जा, रंगाई-पुताई का कार्य अन्तिम चरण पर है।

अतिथि- आठ दिनों के योग शिविर के अतिरिक्त भ्रमण, प्रचार, विद्वानों-संन्यासियों से मिलकर शंका-समाधान करने तथा यज्ञ एवं प्रवचनों का लाभ लेने के लिये देश के विभिन्न भागों से पिछले १५ दिनों में दिल्ली, उदयपुर, बरेली, भीलवाड़ा, रोहतक, जयपुर, मेरठ, सीकर, आबूरोड, बदायूँ, जोधपुर आदि स्थानों से ५१ अतिथि ऋषि उद्यान आये।

दैनिक प्रवचन- प्रात:कालीन प्रवचन में आचार्य सत्यजित् ने ऋग्वेद के चौथे मण्डल के कुछ मन्त्रों के आधार पर विद्वानों के गुणों की व्याख्या की। हठयोग और आयुर्वेद संबन्धी शंकाओं का समाधान किया। सायंकालीन प्रवचन के क्रम में उपाचार्य सत्येन्द्र ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर चर्चा की और ब्रह्मचारियों के प्रश्नों का उत्तर दिया। सभा मन्त्री श्री ओम्मुनि ने असली-नकली भगवान की प्रसन्नता पर अपने विचार प्रकट किये। सभा के सदस्य श्री कन्हैयालाल ने नास्तिकों की विचारधारा के विषय में विस्तार से बताया। श्रीमती कुसुमबाला ने ईश्वर उपासना की वैदिक विधि को बताया। श्री अनूप बत्रा एवं आचार्य रामदयाल ने भजन सुनाया।

यथार्थ के दर्पण में

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

इतिहास किस प्रकार से असत्य लिखा जाता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण हैदराबाद का शास्त्रार्थ है। पौराणिक पण्डितों एवं आर्यसमाजी विद्वानों के मध्य ६ जुलाई १९३५ को हैदराबाद में यह शास्त्रार्थ हुआ था। पौराणिक पण्डितों में मुख्य थे-पण्डित माधवाचार्य और आर्यसमाजी विद्वानों में प्रमुख थे-पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार।

इस शास्त्रार्थ से सम्बद्ध ऋषि दयानन्द के चित्र पर जूता मारने के विषय को लेकर मेरे मन में आशंका थी, अत: मैंने स्वयं ही एक दिन पण्डित जी (स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज) से इस घटना के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा-''बात सामान्य सी थी किन्तु कुछ लोगों ने ईर्ष्यावश इसको तूल दिया। माधवाचार्य जब शास्त्रार्थ के लिए खड़े हुए, उन्होंने कहा कि आर्यसमाजी मूर्तिपूजा नहीं करते हैं तो आप ऋषि दयानन्द के चित्र के ऊपर पैर रखें। मैंने कहा-यह मेरे गुरुदेव का चित्र है, मैं इसका सम्मान करता हूँ किन्तु पूजा नहीं करता। बात आगे चलती रही और माधवाचार्य जी का बीस कला का समय समाप्त हो गया क्योंकि शास्त्रार्थ में वहाँ प्रत्येक वक्ता को अपना पक्ष रखने के लिए बीस मिनट ही मिलते थे। मैं अपने समय में चित्र सहित पुस्तक पर खड़े होकर बीस कला तक मूर्तिपूजा के विरोध में बोलता रहा, जो पुस्तक वे स्वयं ही लेकर आए थे। पौराणिक पण्डित इसे देखकर अपनी घोर पराजय समझ अवाक् एवं हतप्रभ रह गए। वे अपने को पराजित अनुभव कर रहे थे। इसी बीच उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा और सभा में कोलाहल करने लगे-'पण्डित बुद्धदेव जी ने ऋषि दयानन्द के चित्र के ऊपर जूता मारा है'। निश्चित रूप से सामान्य जनों को भड़काकर विजय को पराजय में बदलने का उनका यह षड्यन्त्र था। जैसा कि ऋषि दयानन्द के जीवन में भी कई बार पौराणिक पण्डितों के द्वारा इस प्रकार के अनेक षड्यन्त्र किए जाते रहे थे। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

यहाँ यह समझने की बात है कि वह एक धार्मिक मंच था और वहाँ पर कोई जूता नहीं ले जा सकता था। मैं तो न कभी जूता पहनता था, न पहनता हूँ, फिर चित्र पर जूता मारने का प्रश्न ही कहाँ से खड़ा होता है। माधवाचार्य ने तो केवल चित्र पर पैर रखने की बात कही थी क्योंकि वहाँ वही सम्भव था।

आर्यसमाज में जो लोग स्वामी श्रद्धानन्द जी से द्वेष रखते थे तथा जो मेरे से भी व्यक्तिगत द्वेष रखते थे, उन लोगों को मुझे नीचा दिखाने का जैसे एक अवसर मिल गया और उन्होंने अपने समाचार पत्रों (वीर अर्जुन आदि) में मुझे जान से मारने तक के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित किया, किन्तु हुआ कुछ नहीं। इधर विपक्षी सनातनी पण्डितों ने 'स्वामी दयानन्द के सिर पर बुद्धदेव का जूता' इस नाम से एक पुस्तक ही प्रकाशित करा डाली, जिसमें जैसा कि उनसे आशा की जाती है, यथार्थ से बहुत दूर कल्पित घटनाओं का समावेश किया गया। उस पुस्तक का खूब प्रचार-प्रसार किया गया। यदि चित्र सहित पुस्तक पर खड़े होने मात्र से ऋषि दयानन्द का अपमान होता तो पौराणिक और आर्यसमाजियों में भेद क्या? प्रत्येक राष्ट्र के पत्रकों (टिकटों) पर वहाँ के श्रेष्ठ महापुरुषों के चित्र रहते हैं। भारत में उस समय डाक टिकटों पर महारानी विक्टोरिया का चित्र होता था, वर्तमान समय में गांधी जी का चित्र होता है। इन पत्रकों के दुरुपयोग को रोकने के लिए प्रतिदिन ही डाकघरों में उन राष्ट्रनायकों के चित्रों पर डाकिया काली मोहर लगाता है। क्या इससे उनका अपमान होता है? ये तो उनके राष्ट्रीय संविधान की रक्षा के लिए किया जाता है। मैंने भी जो किया था, वह न आवेश में किया था, न शीघ्रता में। मैंने वह ऋषि दयानन्द की मूर्तिपूजा-विरोधी सिद्धान्त की रक्षा के लिए किया था और सोच-समझकर किया था। अब जो लोग इसको अन्यथा सोचते हैं या तर्क-वितर्क करते हैं, वे ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के प्रतिकूल हैं। उनके इतना कहने पर मेरा समाधान हो गया और मैं चुप हो गया।''

अब मैं पाठकों के समक्ष ऋषि दयानन्द के जीवन की दो घटनाओं को प्रस्तुत कर रहा हूँ। पहली घटना

लाहौर की है-

''जब स्वामी जी लाहौर से प्रचारार्थ कहीं बाहर जा रहे थे उनके साथ में नयी-पुरानी बहुत-सी पुस्तकों के बण्डल थे, जिनमें वेद की पुस्तकों की अधिकता थी। लाहौर संस्थान पर पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि गाड़ी के आने में विलम्ब है। महर्षि कुछ देर तो इधर-उधर भ्रमण करते रहे किन्तु बाद में पड़े बण्डलों में से किसी एक पर बैठ गए। साथ जाने वाले सेवकों में से किसी एक ने कहा- महाराज! इस बण्डल में तो वेद हैं। ऋषि ने उत्तर दिया- वेद ज्ञान उत्कृष्ट है। यह तो कागज है, इस पर बैठने से वेद का न किसी प्रकार से अपमान है, न कोई हानि। गाड़ी के आने तक वे उसी पर बैठे रहे।''

दूसरी घटना २८ अगस्त सन् १८८१ की है-

''जब कुछ मुसलमान काजी जी को साथ लेकर शास्त्रार्थ के लिए ऋषि दयानन्द के पास पहुँचे तो स्वामी जी ने उनको बताया कि तुम दासीपुत्र इसलिए हो कि इब्राहीम की दो पत्नियाँ थीं। एक ब्याही हुई सारा और दूसरी दासी हाजरा। सारा से ईसाई और यहूदी लोग हुए और हाजरा से मुसलमान। फिर तुम्हारे दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? काजी ने कहा कि कुरान में ऐसा नहीं लिखा है। स्वामी जी ने कुरान मँगवाकर काजी को दिखलाया-

उसी वर्ष इस्माइल को हाजरा ने उत्पन्न किया, जो सारा खातून की दासी थी।

(सन्दर्भ -कुराने सूरे अनकबूत, खण्ड-दो, पृष्ठ - १६६)

काजी जी ने कहा कि दासी तो थी, परन्तु विवाह कर लिया था। फिर स्वामी जी ने कहा कि वास्तव में तो वह दासी ही थी। अत: आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? काजी जी निरुत्तर हो गए और सभी मुसलमान अवाक् होकर देखते रह गए। उसी समय स्वामी जी ने कुरान को कुर्सी के नीचे रख दिया। काजी ने कहा- आपने यह क्या किया? पवित्र कुरान को पाँव के स्थान पर रख दिया। अब स्वामी जी कहा- काजी साहब, तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही से कहलाते हो? कागज और स्याही कैसे बनते हैं और छापाखाने में पुस्तकें किस प्रकार छपतीं हैं? कलम क्या चीज है और कहाँ उत्पन्न होती है? इस पर सभी मुसलमान निरुत्तर होकर काजी जी के साथ चले गए।'' **(लेखराम लिखित जीवन चरित्र)**

इन दो सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में यदि ध्यान से देखा जाए तो पण्डित बुद्धदेव जी का ऋषि दयानन्द के चित्र सहित पुस्तक पर खड़े होकर मूर्तिपूजा के विरोध में भाषण देना न कुकृत्य था, न आवेश था और न अनुचित। अब जो लोग आज भी 'निर्णय के तट पर' पुस्तक में कुकृत्य केवल माधवाचार्य की पुस्तक 'स्वामी दयानन्द के सिर पर बुद्धदेव का जूता' के सहारे ही लिखा है, वह सर्वथा असत्य है। उसका सत्य घटना से कोई सम्बन्ध नहीं। पाठकवृन्द इस यथार्थ को जानकर अपने विवेक का सदुपयोग करें।

यदि विरोधियों द्वारा फैलायी हुई मिथ्या बातों को ही प्रमाण माना जाएगा तो पौराणिक विद्वानों के समक्ष ऋषि दयानन्द कभी विजयी नहीं हुए होंगे, यह मानना पड़ेगा क्योंकि उन्होंने अपने पौराणिक जगत् में कभी भी अपनी पराजय नहीं स्वीकार की। यदि कभी किसी व्यक्ति ने व्यक्तिगत रूप से स्वीकार की भी होगी तो तत्कालीन अधिकांश समाचार पत्रों ने उनकी विजय का ही समाचार प्रकाशित किया। इस सम्बन्ध में एक प्रत्यक्ष घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ-

१९६९ या ७० में श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के संयोजकत्व में वाराणसी में आर्यसमाज की ओर से 'दयानन्द शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह' का आयोजन किया गया, उधर पौराणिक विद्वानों में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने भी 'शास्त्रार्थ विजय शताब्दी' का आयोजन किया। दोनों ओर से अपने आयोजन को सफल बनाने के लिए बड़े परिश्रम किए गए। उन्हीं दिनों बिहार के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'आर्यावर्त्त' में मुख्य पृष्ठ पर यह समाचार प्रकाशित हुआ कि 'आर्यसमाज शास्त्रार्थ में बुरी तरह से हार गया' और इसका विस्तृत शृंखलाबद्ध विवेचन इस शीर्षक के अन्तर्गत उपन्यास की शैली में किया गया था। मैं उस समय किसी कार्यवश बिहार में ही मुजफ्फरपुर जिले में गया था। समाचार पत्र पढ़कर मुझे तथा अनेक आर्यसमाजी

विद्वानों को आश्चर्य हुआ। उन विद्वानों ने विशेष रूप से मुझसे आग्रह किया कि आप उधर जा रहे हैं, घटना की वास्तविकता से हम लोगों को भी अवगत कराएंगे। मैं आया और घटना की सत्यता को जानने का प्रयास किया तो पता चला कि वास्तव में वहाँ उन तिथियों में आर्य समाज वा पौराणिक विद्वानों का शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं था। दोनों अपने-अपने मंचों पर एक-दूसरे पर गर्जते-वर्षते रहे। शास्त्रार्थ के विजय-पराजय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं था। जो घटना घटी ही नहीं, उस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध समाचार पत्र मुख्य पृष्ठ पर मुख्य समाचार के रूप में प्रकाशित करता है, यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ।

इसी प्रकार से माधवाचार्य जी ने भी, जो घटना हैदराबाद के शास्त्रार्थ में घटी ही नहीं, उसको कल्पित कर 'स्वामी दयानन्द के सिर पर बुद्धदेव का जूता' नाम से एक पुस्तक ही प्रकाशित कर डाली और हमारे इन तथाकथित विद्वानों ने उसी को प्रमाण मानकर उस घटना का उल्लेख प्रारम्भ कर दिया और आज भी कर रहे हैं, जो इतिहास के साथ वञ्चना तथा आर्यसमाज के साथ छल-कपट कर स्वयं आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द को नीचा दिखाने में लगे हुए हैं। पता नहीं, इन अदूरदर्शी विद्वानों को कब सद्‌बुद्धि आएगी।

गुरुकुल प्रभात आश्रम, भोला झाल, टीकरी, मेरठ

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

गाथा बड़ी पुरानी है

धन्य-धन्य तुम धन्य हो वीरो, धन्य धन्य तुम्हारा बलिदान है।
बलिदानों से वीर तुम्हारे, रही देश-धर्म की शान है।
देश-धर्म पर मर मिटने की गाथा बड़ी पुरानी है।।
राष्ट्र की रक्षा करने की हर वीरों ने ठानी है,
कितने इस राष्ट्र के वीर देश धर्म पर कुर्बान हुए।
भारत के इतिहास में लिखे स्वर्ण अक्षरों में नाम हुए,
भारत माँ का हर बाल युवा बना वीर सेनानी है।

देश-धर्म पर मर मिटने की गाथा बड़ी पुरानी है।
छोटा-सा इक बालहकीकत चढ़ा चाँद असमानी है,
अपने धर्म की खातिर जिसने वार दी जिन्दगानी है।।
गाथा बड़ी पुरानी है।

गुरु गोविन्द जी के चारों बच्चे देश-धर्म बलिदान हुए,
इतिहास के पन्नों में चमके उनके नाम हुए।
गुरु गोविन्द सिंह के बच्चे, उमर में थे अगर कच्चे,
धर्म ईमान के पक्के जोरावर जोर से बोला, फतेहसिंह शोर से बोला।
हमें गुरु ग्रन्थ प्यारा है, हमें निज पन्थ प्यारा है,
ऐसी उनकी अमर कहानी है।। गाथा बड़ी पुरानी है।

कितने भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, आजाद कुर्बान हुए,
रामप्रसाद बिस्मिल जैसे ऊधम सिंह बलिदान हुए।
पृथ्वीसिंह चौहान जैसों ने दी दर्द भरी कुर्बानी है।।
गाथा बड़ी पुरानी है।
वीर शिवा प्रताप पद्‌मिनी का बलिदान याद करो,
बन्दा बैरागी जैसे बलिदानों को हर दम झुककर प्रणाम रो।
नहीं भुलाई जा सकती झाँसी की वह रानी है।।
गाथा बड़ी पुरानी है।
नमन करें उन सब वीरों को, जिन्होंने शीश कटाएँ हैं,
हँसते-हँसते फाँसी चढ़ गए जरा नहीं घबराए हैं।
उनके पीछे अब हमने जिम्मेदारी निभानी है।।
गाथा बड़ी पुरानी है।

पाठकों की प्रतिक्रिया

१. माननीय सम्पादक जी,

परोपकारी अगस्त (प्रथम) २०१७ का अंक पढ़ने को मिला। इसमें प्रकाशित श्री सोमेश जी पाठक द्वारा लिखित 'अपने दाँ पर फिदा' (स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती) नामक लेख पढ़ा। इस लेख में उन्होंने स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी को प्रस्तुत किया है। इस जीवनी में उन्होंने डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार जी द्वारा सम्पादित 'शतपथ के पथिक' ग्रन्थ से सहायता ली है। इस ग्रन्थ में पूज्य स्वामी जी की देहावसान तिथि किसी कारण से त्रुटिवशात् १५ जनवरी १९६९ लिखी गई है, जो कि अशुद्ध है। वास्तव में पूज्य स्वामी जी का देहावसान १४ जनवरी १९६९ को हुआ था। श्रीमद्भगवद्गीता के सामर्पण भाष्य में स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी लिखते हुए प्रभात आश्रम के मन्त्री इन्द्रराज जी ने भी उनकी पुण्यतिथि १४ जनवरी १९६९ ही लिखी है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में प्रकाशित-माधवाचार्य के साथ शास्त्रार्थ में पं. बुद्धदेव जी ने स्वामी दयानन्द जी के चित्र को कागज का टुकड़ा बताकर उस पर जूंता मार दिया, यह घटना भी सत्य से मेल नहीं खाती। यथार्थ रूप से उस शास्त्रार्थ में इस प्रकार की स्थिति तो अवश्य बनी थी, परन्तु उपर्युक्त घटना नहीं घटी थी। यह सब मिथ्या प्रचार स्वामी श्रद्धानन्द जी के विरोधियों द्वारा अपनी प्रसिद्धि के लिए किया गया था, जिसका व्यापक प्रचार महाशय कृष्ण जी आदि महाशयों द्वारा अनेक लेखों तथा भाषणों के माध्यम से किया गया।

महर्षि दयानन्द जी के प्रति यदि पण्डित बुद्धदेव जी की निष्ठा देखनी हो तो आचार्य अभयदेव जी द्वारा 'ऐसे थे स्वामी समर्पणानन्द' लिखा गया लेख अवश्य ही पठनीय है, जो कि 'ब्राह्मण वृत्ति' इस शीर्षक से 'गुरुकुल पत्रिका' के अंक (१६ जुलाई १९३७) में प्रकाशित है। इसी उपर्युक्त शास्त्रार्थ के स्पष्टीकरणार्थ गुरुदेव पूज्य स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी ने पं. बुद्धदेव जी से उस शास्त्रार्थ का यथार्थ जानकर 'यथार्थ के दर्पण में' नामक एक लेख भी लिखा था, जो कि 'गुरुकुल काँगड़ी शताब्दी समारोह स्मारिका' में उसी रूप में प्रकाशित किया गया था।

आपके विशेष ज्ञानार्थ आचार्य अभयदेव जी तथा पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखे हुए उन दोनों ही लेखों को मैं पत्र के साथ प्रेषित कर रहा हूँ। जिससे सब लोगों को यथार्थ का ज्ञान हो सके। **(लेख पृष्ठ संख्या ३८ पर 'यथार्थ के दर्पण में')**

ब्र. नितिनः, गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ

२. मान्य सम्पादक जी, सादर नमस्ते!

सितम्बर (प्रथम) २०१७ का अंक प्राप्त। आपका सम्पादकीय तथा आदरणीय तपेन्द्र जी की लेखमाला की पाँचवी मणि को चाव से पढ़ा। श्रीयुत् तपेन्द्र जी की प्रतिभा तथा ऊहा से तो मैं वर्षों से परिचित हूँ, परन्तु उनकी साहित्यिक प्रतिभा का तो इस लेखमाला से ही पता चला। वह अपनी लौह लेखनी से आर्यसमाज के मिशन को आगे बढ़ाने में पूरी शक्ति से जुटें, मेरी यही कामना है।

आप दोनों को बधाई स्वीकार हो।

आपका अपना
राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

३. आदरणीय सम्पादक, सादर नमस्ते।

'परोपकारी' पाक्षिक का सितम्बर (प्रथम) २०१७ का अंक मिला। मेरी दृष्टि 'पाठकों के विचार' कालम पर आकर ठहर गयी। लेखक-वेदप्रकाश गुप्ता, लखनऊ, उस पर मेरे विचार प्रस्तुत हैं। लेखक ने वैज्ञानिक सत्य की ओर संकेत किया है। बार-बार पढ़ना पड़ता है। विचार करना पड़ता है। 'लौ-युक्त अग्नि' और 'लौ-रहित यज्ञ'। हम तो हमेशा से यही विचारते हैं कि 'लौ-युक्त अग्नि' का यज्ञ ही सफल होता है। लौ जितनी ऊँची होगी यज्ञ उतना ही सफल होता है। यह भी जानते हैं कि आहुतियाँ अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से देनी चाहिए। घृत की हो या सामग्री की। यह भी कहते हैं कि डाली सामग्री लौ में पड़ते ही कुण्ड के नीचे जाते-जाते भस्म हो जानी चाहिए। जमा नहीं होनी चाहिए। कभी-कभी नियन्त्रण खो जाते हैं तो सामग्री के दबाव से अग्नि बुझ जाती है। कपूर डालकर पुनः यज्ञ जारी रखते हैं। यज्ञ समाप्त होने पर कुण्ड के निचले भाग में अंगारे जमा हो जाते हैं। शेष सामग्री उसी पर डालकर पूर्णाहुति कर डालते हैं। धुआँ काफी उठने लगता है। सुगन्ध से भरा धुआँ। आँखों को जलाता नहीं है। लेखक के विचार से लौ-रहित यज्ञ ही सफल यज्ञ है। आर्यजगत् को अवलोकन करके किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिए। इस विचार पर विचारवान् लोगों के विचारों की प्रतीक्षा रहेगी। धन्यवाद।

सोनालाल नेमधारी, -मॉरिशस

४. विचारार्थ यह है कि जो भी सार्वजनिक संस्था के लिए

अपने जीवन को समर्पित कर दे, उसके प्रति संस्था का क्या यह व्यवहार उचित है कि उसे जीवन के अन्तिम समय में असहाय छोड़ दिया जाये, निराधार, भीख माँगकर खाने के लिए सड़क पर रात व्यतीत करने के लिए। बीमार पड़ने पर वह बिना ईलाज के शारीरिक कष्ट उठाने, आवश्यकता-पूर्ति के लिए दूसरों के सामने लाचारी शब्दों और कार्यों में दिखावे। आज तो गृहस्थी भी कर्त्तव्यहीन् हो वृद्धावस्था में ऐसे स्थान पर भेजकर निश्चिंत हो जाते हैं। उपयोगिता बाद, अब ये किसी उपयोग का नहीं।

स्वामी प्रवासानन्द सरस्वती

५. आदरणीय डॉक्टर भाई धर्मवीर तकरीबन २०१३ में आर्यसमाज सैक्टर १३ करनाल के वार्षिक उत्सव पर आए थे। परोपकारी के लिए ग्राहक बना रहे थे। मैंने भी उनको अपने सुपुत्र के नाम ग्राहक बनाने हेतु एक हजार रु. दिया। इसके बाद मैंने उनको पाँच सौ रु. और दिये तो उन्होंने मुझसे बड़ी नम्र आवाज में पूछा-भाई जी, यह राशि किस हेतु है? मैंने उनको कहा कि आप जैसा महान् विद्वान् दयानन्द के खूँटे से बन्धा हुआ है इसलिए दे रहा हूँ, क्योंकि प्राय: तथाकथित विद्वान् थोड़ी सी प्रसिद्धि मिलने पर आर्यसमाज और ऋषि को छोड़कर धन के लालच में भाग जाते हैं, छोड़ जाते हैं। यह आपकी बहुत बड़ी तपस्या है कि आप महर्षि को पकड़े हुए हैं।

आदरणीय डॉक्टर भाई जी ने बड़ी विनम्रता की शैली में उत्तर दिया "भाई जी, मैं तो किसी से अपने निज के लिए कुछ नहीं लिया करता हूँ। मेरे लिए तो सभा ही सब कुछ है। जो कुछ मुझे लेना होता है तो सभा से ले लेता हूँ और जो कुछ भी मुझे देंगे वह सभा का ही होगा।" इसके पश्चात् उन्होंने पाँच सौ भी एक हजार के साथ मिलाकर मेरे सुपुत्र को परोपकारी का आजीवन सदस्य बना दिया।

ऐसे त्यागी, तपस्वी, कर्मठ कार्यकर्त्ता विद्वान् को शत शत प्रणाम।

सुन्दर सिंह आर्य, पूर्व प्रधान-आर्यसमाज होली मौहल्ला, करनाल।

६. श्रीमान् जी,

परोपकारी अंक अक्टूबर (प्रथम) २०१७ में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज में तथाकथित गाँधी (महात्मा) के विचार पढ़कर सोचता हूँ कि जिस आदमी को भारत के लोग आजादी का मसीहा मानते हैं, मेरा निजी विचार है कि ऐसे लोगों की वजह ही से भाई से भाई में मतभेद पैदा हुआ। लेख से इतिहास की कई नई जानकारी हुईं, ऐसे लेख प्रकाशित करने पर बहुत बधाई।

विनोद आर्य, कलाँवाली, सिरसा

७. महोदय, निवेदन है कि मैंने आपकी पत्रिका के "जून प्रथम-२०१७, वर्ष ५९, अंक -११ के पेज ९ पर"-'कर्ण के जन्म की पड़ताल' नामक शीर्षक, जो श्री जगदीशप्रसाद हरित जी द्वारा दिया गया है, पढ़ा।

मैंने लेख पढ़ने के बाद यही निष्कर्ष निकाला है कि महाभारत के कई उदाहरणों के द्वारा कर्ण को कई नामों से पुकारा गया है। लेकिन कर्ण के जन्म की पड़ताल पूर्णरूप से नहीं हो सकी कि कर्ण का जन्म कैसे हुआ और कर्ण के असली पिता कौन थे।

गोवर्धनसिंह आर्य, काकड़ा-खास, मुजफ्फरनगर

८. आदरणीय सम्पादक जी,

'परोपकारी' के सितम्बर (प्रथम) २०१७ के अंक में पृ. २०-२२ पर 'शिक्षक सामान्य नहीं होता' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। लेख अच्छा बना है, परन्तु उसमें यह वाक्य सही नहीं है- "सियालकोट और अमृतसर के मध्य रावी नदी के निकट गंगापुर गाँव में सन् १७७९ को सारस्वत ब्राह्मण नारायणदत्त के घर एक पुत्र का जन्म होता है।"

वास्तविकता यह है कि गंगापुर गाँव रावी नदी के निकट नहीं था। रावी नदी वहाँ से बहुत दूर है। गंगापुर के निकट देई नामक एक नदी बहती थी जो आज नहीं के समान है। हाँ, यह कहना उचित होगा कि गुरु विरजानन्द का जन्म अमृतसर तथा जालन्धर के मध्य बह रही नदी सतलुज के निकट गंगापुर नामक गांव में हुआ था। गंगापुर आज लुप्त हो चुका है। वर्तमान करतारपुर गंगापुर गाँव के निकट है जहाँ विरजानन्द गुरुकुल चलता है।

इन्द्रजित् देव

टिप्पणी- इस लेख का स्रोत डॉ. रामप्रकाश जी द्वारा लिखित पुस्तक 'गुरु विरजानन्द दण्डी-जीवन एवं दर्शन' है। इस पुस्तक के पृष्ठ २ पर लिखा है कि स्वामी विरजानन्द जी ने ही अपने शिष्यों के आग्रह पर बताया था- "सियालकोटाऽमृतसरनामनगरयोरन्तरालेइरावती (रावी) सन्निहिते.....ग्रामे......इदानीं दण्डित्वेन प्रसिद्ध इति"

इस वाक्य को सही माना जाये तो स्वामी जी स्वयं अपना जन्म स्थान सियालकोट और अमृतसर नगर के बीच बहने वाली इरावती (रावी) नदी के निकट ग्राम में बताते हैं।

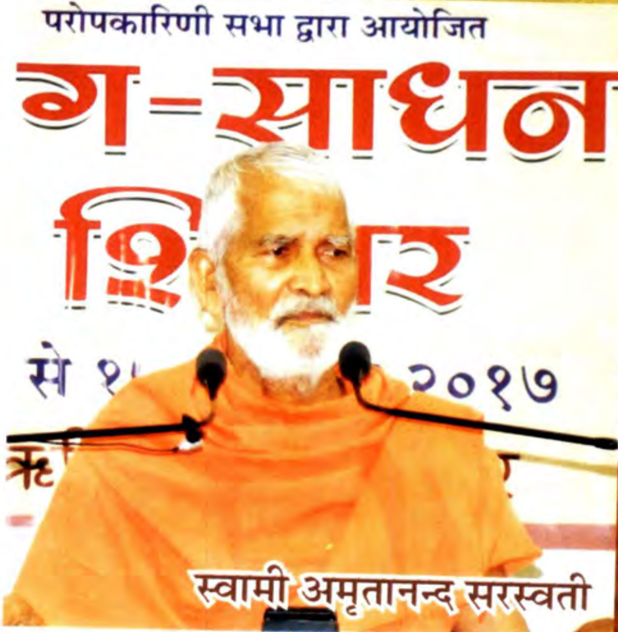

स्वामी अमृतानन्द सरस्वती

स्वामी मुक्तानन्द 'परिव्राजक'

स्वामी आशुतोष 'परिव्राजक'

श्री ओम्मुनि 'वानप्रस्थी'

आर जे/ए जे/80/2015-2017 तक
प्रेषण : ३० अक्टूबर, २०१७
आर.एन.आई. ३९५९/५९

योग साधना शिविर ८ से १५ अक्टूबर २०१७

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

1026 सम्मानित
श्री व्यवस्थापक
साप्ताहिक आर्य संदेश, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा,
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली